# अँधेरा

अखिलेश

हिन्दी ADDA

# अँधेरा

प्रेमरंजन का जीवन अक्सर परेशानियों से भर उठता था। रंगबिरंगी भाँति-भाँति की परेशानियाँ उसके संसार में विचरण करने लगतीं। मसलन वह कभी खरीददारी के लिए बाजार जाता तो पाता कि रुपये घर में उतर चुकी पतलून की जेब में रह गए हैं। इसी प्रकार जब उसे ज्यादा पढ़ाई करनी होती, बिजली गुल हो जाती और जब लिखना

होता तो पेन की रोशनाई खत्म हो जाती। सभा-समारोहों में उसके पैंट की जिप का खराब होना आम बात थी। राह चलते उसकी चप्पल टूट जाती, तो प्यास लगने पर कमरे में रखी सुराही फूट जाती।

पिछले दिनों वह अपनी दाढ़ी की वजह से परेशान था - युवा, नरम, हल्की और लचीली दाढ़ी। हुआ यह था कि रेहाना ने जिद पकड़ ली थी कि वह इस अत्यंत प्रिय दाढ़ी को मुड़ाकर चिकना-चुपड़ा हो जाए।

आखिर क्या करता, हिम्मत बटोरकर 'बांबे हेयर कटिंग सैलून' में घुसना पड़ा था। अनवर नाम का छोटे कदवाला वह हज्जाम गवाही दे सकता है कि सफाचट में अपने रूपांतरण की क्रिया के समय प्रेमरंजन ने आँखें मूँदकर दाँत भींच लिया था और साँसें रोक ली थीं। बाद में आईने में देखकर उसने कराह भरी थी, और पुनः आँखें मूँद ली थीं। उसे अपना चेहरा बहुत छोटा, रूखा, कठोर तथा घाघ लगने लगा था। वह अनुभव कर रहा था कि उसका समस्त तेज लुट गया है। उसने सोचा - "मैं यह निष्प्रभ चेहरा लेकर रेहाना से कैसे मिलूँगा।" फलस्वरूप वह तब तक युनिवर्सिटी नहीं गया जब तक कि उसके गालों पर पुनः युवा, नरम, हल्की और लचीली दाढ़ी वापस नहीं आ गई।

मगर रेहाना उसे देखकर भड़क गई - "तुम मेरी खातिर अपनी दाढ़ी तक नहीं कुर्बान कर सकते।"

"अच्छा बाबा करूँगा। मैं तुम्हारी खातिर दुबारा अपनी दाढ़ी कुर्बान करूँगा।" यह कहकर वह उल्टे पाँव फिर 'बांबे हेयर कटिंग सैलून' में गया।

पुनः उसकी दाढ़ी अनवर हज्जाम के हवाले थी।

इस बार अपनी दाढ़ी की बलि देकर वह सीधे एक जनरल स्टोर्स पर पहुँचा और दाढ़ी बनाने का सामान खरीदने लगा।

दाढ़ी बनाने का सामान लेकर वह अपने कमरे पर आया और आते ही दाढ़ी बनाने लगा। उसे दाढ़ी बनाने की सनक लग गई थी जैसे - जब मौका पाता, दाढ़ी बनाने लगता। वह पढ़ रहा होता... पढ़ रहा होता... कि रेहाना की याद आती और दाढ़ी बनाने लगता। शाम को घूम-टहलकर आता, दाढ़ी बनाने में जुट जाता और सुबह होते ही फिर ब्लेड, ब्रश वगैरह लेकर बैठ जाता। एक बार किसी सपने की वजह से वह जग गया और तीन बजे रात में ही दाढ़ी बनाने लगा था।

कुछ दिनों बाद उसका चेहरा क्लीन शेव्ड का अभ्यस्त हो गया, और उसे अपना यह रूप भाने लगा। अब रेहाना की अपनी शर्त पूरी करने की बारी थी। रेहाना ने कहा था कि यदि वह दो माह लगातार क्लीन शेव्ड रहेगा तो तीसरे महीने के पहले हफ्ते में किसी रोज वह उसके साथ घूमेगी लेकिन यदि प्रेमरंजन शर्त हार गया तो रेहाना उससे कभी नहीं बोलेगी। बहरहाल नतीजा आ चुका था। प्रेमरंजन शर्त जीत चुका था और अब उसे उस दिन का इंतजार रहने लगा था जब रेहाना उसके साथ घूमने चलेगी...।

आज वह दिन आ गया था। सबसे खास बात यह थी कि आज उसके पास रंगबिरंगी भाँति-भाँति की परेशानियाँ तो दूर की चीज, कोई भी परेशानी नहीं थी। उसे रेहाना से बुद्धा पार्क में मिलना था और उसके साथ देर तक घूमना था।

जब वह रेहाना से मिलने के लिए अपने किराए के कमरे से निकला तो उसका जीवन परेशानी नहीं, रंग-बिरंगी खुशियों से भरा हुआ था। आज वह और रेहाना साथ-साथ वक्त बिताएँगे - यह उसका बहुप्रतीक्षित घोर रोमांटिक स्वप्न था जो साकार होने जा रहा था। यूँ ऐसा दो-चार रोज पहले भी संभव हो सकता था मगर दो-चार रोज पहले तक उसकी जेब तैयार नहीं थी। जेब दो-चार रोज बाद भी खास तैयार नहीं थी, पर इजी मनी के इस युग में पाँच-छह सौ रुपयों के उधार की व्यवस्था कोई मुश्किल काम न था। खुशी की बात थी कि उसे दो हजार मिल गए थे।

दो हजार रुपये पास आ जाने पर उसने एक खूबसूरत शर्ट खरीदकर पहनी। उसने उतारी हुई शर्ट को खूँटी पर टाँगा और कहा - "मेरी पुरानी प्यारी कमीज बुरा मत मानना। एक दिन तुम्हें भी पहनकर रेहाना के साथ घूमूँगा।" उसने अपने पैंट की पीछे वाली जेब में नया पर्स रखकर पुराने पर्स को कूड़ेदान में फेंका - "माफ करना मेरे फटे पर्स, रुपये रूपी आत्मा ने अब नया शरीर धारण कर लिया है।" इसी प्रकार उसने एड़ियों पर फट चुके मोजों से कहा - "अलविदा मेरे मोजो।" और दाँतों के बीच-बीच में मैल इकट्ठा कर चुकी छोटी कंघी से बोला - "यदि नईवाली किसी दिन खो गई तो तुमको फिर से इस्तेमाल करूँगा, रंज मत कर मेरी नन्हीं कंघी।"

उसने पहली बार सेंट खरीदा था जिसे नई शर्ट की काँखों, कालर, छाती और आस्तीन पर बेहिसाब छिड़क लिया था। उसने यूँ तो धूप का एक चश्मा भी खरीदा था लेकिन उसे लगाया नहीं। उसने चश्मा अलमारी के भीतर यह कहकर रख दिया - "ओ काले-काले चश्मे, तुझे आँखों पर लगाने पर रेहाना को हू-ब-हू नहीं देख पाऊँगा।" इसके बाद उसने कमरे में ताला जड़ा और होंठों को गोल-गोल कर सीटी बजाता हुआ हीरो होंडावाले दोस्त के यहाँ चल दिया।

हीरो होंडावाले दोस्त से उसे उम्मीद थी कि आज के मौके के लिए वह अपनी होंडा उसे जरूर दे देगा किंतु दोस्त स्वयं इन दिनों कुछ इसी प्रकार के कामों में मुब्तिला था। अतः वह अपने स्कूटरवाले मित्र के यहाँ पहुँचा। मालूम हुआ कि यह मित्र स्कूटर बनवाने के लिए ही बाहर निकला है। इस प्रकार रेहाना को दुपहिया वाहन पर पीछे बिठाकर तेज गति से चलाते हुए खचाक् से ब्रेक लगाने का उसका मंसूबा धरा का धरा रह गया था।

वह हारा और हताश सड़क पर खड़ा था। वह पछता रहा था कि अनावश्यक यह माँगने-वाँगने का चक्कर चलाया जबकि उसके पिताजी ने बचपन में ही शिक्षा दी थी कि इनसान को माँगने से बचना चाहिए। उसने निश्चय किया - "भविष्य में मैं माता-पिता के बताए आदर्शों पर चलूँगा।" फिर सोचा - "मैं उनके बताए आदर्शों पर चला तब हो चुका कल्याण और हो चुकी रेहाना से मेरी शादी। अरे ऐसे माता-पिता इस्लाम धर्म की रेहाना को अपनी बहू कैसे कबूल करेंगे जो मुसलमानों के लिए घर में अलग ग्लास और प्लेट रखते हैं। जो लोग कटहल और प्याज से परहेज करते हैं तथा बैगन को देखकर भड़कते हैं वे बिरयानी और गोश्त की शौकीन से क्या खाक अपना बेटा ब्याहेंगे।" वह मन ही मन बड़बड़ाया - "पर मैं करूँगा ब्याह। तुम मुझे कम मत समझो रेहाना, अपनी पर आ गया तो माँ-बाप को भी एक दिन बिरयानी खिलाकर रहूँगा।"

उसने तय किया कि इस बार छुट्टियों में घर जाने पर परिवार, परिचितों, रिश्तेदारों की बीच धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध और मांसाहार के पक्ष में वातावरण बनाएगा।

अब याद आने पर शर्मिंदा होता है कि मुसलमानों को लेकर वह स्वयं शुरू-शुरू में कितना वाहियात था। अभी तक वैसा ही वाहियात बना रहता, यदि रेहाना के प्यार में न पड़ जाता। उसने एक आह भरी - "अपनी दकियानूसी मूर्खताओं के चलते मैंने रेहाना को कितनी तकलीफ दी है।" उसे तुरंत 'जूठ' का वह प्रकरण याद आया और उसका सिर शर्म से झुक गया...।

तब रेहाना युनिवर्सिटी में नई-नई आई थी मास्टर ऑफ सोशल वर्क की छात्र बनकर। अभी प्रेमरंजन से उसके प्यार की शुरुआत नहीं हुई थी किंतु प्यार का वायुमंडल बनने लगा था। जैसे कि प्रेमरंजन से बात करते समय वह हँसने लगती थी। कभी-कभी बात में वीर रस या करुण रस रहने पर भी वह हँसने लगती थी। कभी कोई वजह न होने पर भी वह हँसती। हँसते समय रेहाना की आँखें सिकुड़ जाती थीं और प्रेमरंजन को लगता था कि उन सिकुड़ी हुई आँखों में कोई टिमटिमाहट है जो उसे ही समर्पित है। दूसरी

तरफ जब रेहाना बात करती तो प्रेमरंजन की हँसी लापता हो जाती थी। वह इतनी गंभीरतापूर्वक रेहाना को सुनता कि रेहाना को भ्रम होता कि वह सुन भी रहा है या नहीं। इंतिहा तब हो जाती जब रेहाना के लतीफों को भी वह गंभीरतापूर्वक सुनता। ऐसी दशा में रेहाना अपनी हथेली उसकी आँखों के सामने लहरा कर कहती - "कहाँ खोए हुए हैं जनाब?"

प्यार का वायुमंडल बनने लगा था, यह इससे भी पता चलता था कि रेहाना की अनुपस्थिति में रेहाना की याद आने पर प्रेमरंजन को कभी बहुत तेज जाड़ा लगने लगता था तो कभी बेपनाह गर्मी लगने लगती। कभी अपने भीतर आँधी चलती हुई महसूस होती तो कभी वृक्षों के पत्तों पर पानी गिरने की आवाज सुनाई पड़ती। समूह में रेहाना मिलती तो उसे लगता वातानुकूलित कक्ष में बैठा किसी महान चित्रकार की कला देख रहा है। और जब यदा कदा एकांत में रेहाना से मुलाकात हो जाती तो उसके पेट में शूल उमड़ने लगता। वायुदाब इस प्रकार हरहराता जैसे झूले पर बैठने पर ऊपर से नीचे आते समय होता है। उधर रेहाना की दशा पेचीदा थी। वह प्रेमरंजन को देख कभी अनायास मुस्कराने लगती और कभी अनायास रुआँसी हो जाती। वह चुप रहती... चुप रहती कि जीभ बाहर निकालकर उसे चिढ़ाने लगती। या कभी उसके कान में चुपके से पेन्सिल डालकर चौंका देती।

उनके संबंधों में नाटकीय मोड़ तब आया जब शबेबारात की छुट्टी के बाद युनिवर्सिटी खुली। यूँ तो युनिवर्सिटी में टिफिन लाने का रिवाज नहीं होता, कैंटीन जिंदाबाद रहती है, लेकिन ईद, बकरीद, शबे बारात की छुट्टियों के बाद युनिवर्सिटी खुलने पर कई मुस्लिम लड़कियाँ दोस्तों को खिलाने के लिए टिफिन ले आतीं। रेहाना ने ढक्कन खोला - "हलवा अम्मी ने नहीं मैंने बनाया है।" दोस्त उत्साहपूर्वक हलवा पर टूट पड़े थे। मगर प्रेमरंजन ने खाने से इनकार कर दिया था - "मुझे हलवा बिल्कुल पसंद नहीं, मीठी चीजें मैं जरा कम ही खाता हूँ।"

"तुम जैसे मीठे के दुश्मनों के लिए अम्मी ने बनाया है छोला...s...s...।" रेहाना ने जोश के साथ टिफिन के दूसरे डिब्बे को खोला। सब उत्साह में आ गए। एक दोस्त ने अखबार बिछाकर दस्तरख्वान लगा दिया तो दूसरा दौड़कर पानी की दो बोतलें ले आया। उतावलापन इतना अधिक था कि रेहाना से टिफिन छीनकर सारे डिब्बे खोल दिए गए। सब चिल्ला पड़े - "वाह।" कबाब और दही बड़े भी थे। प्रेमरंजन चेहरे को मनहूस बनाकर बोला - "मैं कुछ नहीं खा सकूँगा, मेरा पेट गड़बड़ चल रहा है।" दोस्तों ने काफी इसरार किया। रेहाना ने भी पुरजोर गुजारिश की लेकिन वह ठूँठ बना रहा, पसीजा नहीं। उसका पेट गड़बड़ था, गड़बड़ बना रहा।

प्रेमरंजन का पेट तब ठीक हुआ जब शाम को एक दोस्त ने उसे किंग चाट हाउस पर देखा। दोस्त चुपचाप मुआयना कर रहा था - किंग चाट हाउस पर प्रेमरंजन ने पहले छोला खाया, फिर दही बड़े खाए। हलवा वहाँ बिकता नहीं था वर्ना उसे भी वह अवश्य खाता। जब वह दुकानदार को पैसे दे रहा था तभी दोस्त ने उसे धर दबोचा। प्रेमरंजन गिड़गिड़ाने लगा - "यार रेहाना से मत बताना, बुरा मान जाएगी।"

"रेहाना के बुरा मान जाने का इतना ख्याल है तो उसकी लाई चीजें खा लेते। यकीन मानो, इस ठेले के दही बड़ों और छोले से खराब कतई नहीं लगता।" दोस्त ने फब्ती कसी।

"नहीं...नहीं... वो बात नहीं है... बात ये है कि... मुसलमान जो चीजें खिलाते हैं उसे जूठा कर देते हैं...।"

यह दोस्त इतना निर्दय और बदमाश था कि अगले दिन खाली पीरियड में जब सभी ब्रेड पकौड़े और चाय पर टूटे हुए थे वह रेहाना से बोला - "रेहाना तुम्हारे पैसों से आए ब्रेड पकौड़े प्रेमरंजन खा रहा है लेकिन तुम्हारे घर की पकी हुई चीजें यह कभी नहीं खाएगा।"

"क्यों...क्यों...क्यों... ?" रेहाना ने नकली तनातनी दिखाई।

"इसलिए कि...।"

"हाँ...हाँ... किसलिए... बोलो।"

"इसलिए कि प्रेमरंजन कहता है कि तुम लोग खाने-पीने की चीजें हिंदुओं को जूठा करके देते हो।"

रेहाना अपमान से सुर्ख़ हो गई। अगले ही क्षण हाथ का चम्मच फेंककर वह खड़ी हो गई और थोड़ी दूर जाकर फूट-फूटकर रोने लगी थी...।

उस दिन के बाद हालात बदल गए थे। अब रेहाना जब भी उसे देखती, उसकी आँखें भर आतीं। उसके देखने में न जाने क्यों क्रोध नहीं अफसोस भरा रहता था। अफसोस शायद इस बात का था कि उसको प्रेमरंजन से ऐसे सलूक की उम्मीद न थी। पता नहीं क्या बात थी कि प्रेमरंजन को देखकर जब रेहाना की आँखें डबडबा आतीं तो वह इतनी निश्छल, मासूम और पवित्र हो जाती थी कि प्रेमरंजन उसकी वह छवि भूल नहीं पाता था। अंततः उसके भीतर गहन आत्मधिक्कार आवाज देने लगता। उसने सोचा - "मैं

कितना मूर्ख, दकियानूस और चूतिया हूँ कि अपने देश के अल्पसंख्यक समुदाय के बारे में ऐसे विचार रखता हूँ।" इस संबंध में उसने गहराई से विचार किया और पाया - "एक जनेऊधारी हनुमान भक्त पिता और प्रति सप्ताह दो उपवास रखनेवाली माँ की औलाद मैं हो भी कैसा सकता हूँ। औरतों के साथ अत्याचार करनेवाले व्यभिचारी बाबा का पोता और शूद्रों पर अत्याचार के लिए विख्यात परबाबा का परपोता मैं प्रेमरंजन निहायत कमीना इनसान नहीं बनूँगा तो क्या बनूँगा।" वह पश्चाताप की अग्नि में भस्म होने लगा - "हे भगवान, ये मुझसे क्या हो गया...।"

हफ्ते भर में ही स्थिति यह हो गई कि मुलाकात होने पर जब रेहाना की आँखें डबडबातीं तब रेहाना से भी अधिक प्रेमरंजन की आँखें भर आती थीं। यह सिलसिला दो-चार चला होगा कि एक दिन एकांत पाकर प्रेमरंजन ने रेहाना से कहा - "मुझे माफी नहीं दोगी? मानता हूँ कसूर मेरा है, पर क्या करूँ मेरे भीतर बचपन से ही जाने कैसे यह फितूर बैठ गया था...।"

रेहाना खामोश रही।

"रेहाना खुश हो जाओ और मुझे माफ कर दो... देखो एक गलती दुश्मन की भी भुला दी जाती है... और मैं तो तुम्हारा दोस्त..." और अचानक ही उसका वह वाक्य वहीं छूट गया, वह नामालूम किस आवेग में दूसरा वाक्य कहने लगा - "रेहाना तुम्हें माफ करना ही पड़ेगा। तुम नहीं जानती कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ। तुम्हारी गैर मौजूदगी में भी तुम्हें भूल नहीं पाता हूँ। रेहाना मैं फिर कह रहा हूँ कि मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ। जूठा क्या तुम जहर भी खिलाओगी तो मैं खाऊँगा।"

रेहाना की आँखों से आँसू ढुलक पड़े। उन्हें आस्तीन से पोंछकर वह मुस्कराई - "कल मैं जहर मिलाकर नहीं, टिफिन में केवल जहर लेकर आऊँगी। तुम खाओगे?"

"हाँ मैं खाऊँगा।"

अगले रोज रेहाना का टिफिन देखते ही दोस्त लोग चिल्ला पड़े - "अरे टिफिन! उधर न ईद थी, न बकरीद, न शबे बारात। फिर किस खुशी में ये टिफिन?" एक दोस्त ने शोर मचाया - "ओ रेहाना, तेरी शादी तय हो गई क्या...?"

टिफिन खुला, उसमें सिंवइयाँ थीं। दोस्त उसकी तरफ लपके लेकिन रेहाना ने सभी को रोक दिया - "इस सिंवई में जहर है।" उसने प्रेमरंजन की तरफ घूरा - "हाँ जहर।" वह सबकी तरफ मुखातिब हुई - "तुम लोग यह सुन ही चुके हो कि मुसलमान हिंदुओं के

खाने-पीने की चीजों में जूठा मिला देते हैं।" वह थोड़ा ठहरकर फिर बोली - "यह भी जरूर सुना होगा कि वे जहर भी मिला देते हैं - कभी खाने में, कभी दूध में, कभी पीने के पानी में - कुएँ में या पानी की टंकी में। और आज एक मुसलमान के घर से आई इस सिंवई में भी जहर है।" उसकी आवाज काँप रही थी और आँखें रो रही थीं। सारे दोस्त खामोश होकर प्रेमरंजन को देख रहे थे।

प्रेमरंजन उठा, आगे बढ़ा और सिंवई के पात्र को मुँह से लगा लिया जैसे कुछ कैलेंडरों में शंकर जी गरल पान करते हैं। प्रेमरंजन ने सारी सिंवई अकेले खत्म करके पात्र को नीचे रखा तो दोस्तों की तरफ से तालियाँ बजने लगीं।

तालियाँ खत्म करने के बाद एक दोस्त ने कहा- "रेहाना हमारा जहर कहाँ है?" सब हँस पड़े।

प्रेमरंजन के चेहरे पर सिंवइयाँ पुत गई थीं। वह हाथ-मुँह धुलने के लिए बाथरूम जाने लगा। धुलने के इरादे से टिफिन भी साथ ले जाने लगा तो रेहाना ने रोका - "मैं धुल लूँगी। वर्ना कहोगे कि मुसलमान जिसे खिलाते हैं उसी से बरतन भी धुलवाते हैं।"

"प्लीज रेहाना, अब कुछ ज्यादा हो जा रहा है।" दोस्तों ने ऐतराज जताया।

प्रेमरंजन और रेहाना साथ-साथ उठे। एक हाथ-मुँह धुलने के लिए तो दूसरा टिफिन साफ करने के लिए। बाथरूम में जब प्रेमरंजन का चेहरा और रेहाना का टिफिन दोनों धुल गए तो रूमाल से चेहरा पोंछते हुए वह बोला - "सारा जहर अकेले खा लिया मैंने। अब मैं मर चुका हूँ।" फिर उसने धीमे से जोड़ा - "तुम पर।"

रेहाना ने उसे भर निगाह देखा - "जहर खा लिया पर जूठा तो नहीं खाया।"

"तुम मुझे माफ कब करोगी रेहाना?"

"जब तुम मेरा जूठा खाओगे।"

"वह भी खिला दो किसी दिन।"

"किसी दिन क्यों, अभी खाना पड़ेगा।"

रेहाना ने आगे बढ़कर दरवाजे को बंद किया। लौटकर प्रेमरंजन से बोली - "ये टिफिन तुम पकड़ो जरा।"

"क्यों?"

"तुमको जूठा खिलाऊँगी।"

प्रेमरंजन के एक हाथ में टिफिन था, दूसरे में रूमाल। रेहाना के दोनों हाथों में प्रेमरंजन का चेहरा था। रेहाना ने प्रेमरंजन के होंठों को अपने होंठों के भीतर कर लिया। रेहाना की जीभ उसकी जीभ और उसके तालू पर सरसराई। एकाएक रेहाना झटके से मुक्त हो गई और तीर की तरह बाथरूम से बाहर निकल गई। टिफिन और रूमाल लिए हुए प्रेमरंजन वहाँ अकेला खड़ा था।

उसके बाद एक विचित्र स्थिति यह हुई कि प्रेमरंजन अक्सर रेहाना से याचना करने लगा - "मुझे एक बार फिर अपना जूठा खिला दो। मैं रोज तुम्हारा जूठा खाना चाहता हूँ।" लेकिन उसके हजार आग्रह के बावजूद रेहाना पसीजी नहीं।

एक बार की ही सही, प्रेमरंजन के पास अनोखी स्मृति थी। मौके-बेमौके वह अनोखी स्मृति याद आती और तब वह सनसनाहट से भर जाता। जैसे तेज हवा चलने पर बिजली के तार हिलते हैं और आवाज करते हैं, उसी तरह वह अपने अंदर महसूस करता। उसे लगता कि उसके अंदर ढेर सारे बिजली के तार हिल रहे हैं - तेज हवाएँ चल रही हैं - और आवाजें हो रही हैं। और यह भी कि उसके भीतर बिजली दौड़ रही है। नतीजतन वह पुनः कातर स्वर में अनुरोध करता - "क्या अब मुझे कभी भी तुम्हारा जूठा नहीं मिलेगा?" हकीकत यह थी कि बाथरूम में घटित प्रकरण की पुनरावृत्ति का उसका सपना अभी तक साकार नहीं हुआ था।

पर आज जब वह चिकना-चुपड़ा होकर नई कमीज, नई बनियान, नई कंघी, नई रूमाल के साथ निकला, तब आशान्वित था। उसमें उम्मीद चमक रही थी कि हो सकता है, रेहाना का हृदय आज द्रवित हो जाए। इसलिए हीरो होंडा या स्कूटर न मिलने के बाद भी वह अपने को परेशानियों से घिरा हुआ नहीं अनुभव कर रहा था, और सड़क के किनारे खड़ा बीच-बीच में मुस्करा रहा था, बल्कि उसके भीतर बिजली के तार भी हिल रहे थे... आवाजें भी हो रही थीं... भीतर बिजली भी दौड़ रही थी, और वह फिर मुस्करा पड़ रहा था...।

प्रेमरंजन पार्क के सामने था। स्कूटरवाले दोस्त के घर से निकलकर आखिर कितनी देर सड़क पर अकेला खड़ा अपने भीतर बिजली दौड़ाता रहता और मुस्कराता रहता। वह बस पकड़कर बुद्धा पार्क के सामने आ गया। उसने घड़ी देखी तो खुद से सवाल किया - "मैं इतना पहले कैसे आ गया? जबकि मैं दुपहिया वाहन से नहीं, पैदल और

बस यात्रा के सम्मिलत प्रयास से पहुँचा। फिर भी जल्दी आ गया।" इसका सीधा संक्षिप्त उत्तर यह था कि रेहाना से मुलाकात के जोश में उसने अपना कमरा जल्दी छोड़ दिया था। वैसे यह अर्द्धसत्य है। दरअसल जोश के अलावा भी कुछ वजहें थीं उसके जल्दी निकल पड़ने की। जैसे कि उसे आशंका हुई कि यदि वह सही समय पर कमरे से निकला और रास्ते में चप्पल टूट गई या कोई बातूनी इनसान रास्ता रोककर देर तक बतियाने लगा या किसी अंधे ने भीड़ भरी सड़क पार कराने का निवेदन कर दिया या बुद्धा पार्क पहुँचने के पहले वाहन रास्ते में खराब हो गया तो क्या होगा। रेहाना खफा होकर चल देगी वहाँ से और क्या होगा! उसे यह डर भी था कि हो न हो, रेहाना की घड़ी तेज चल रही हो, इस कारण वह पहले ही बुद्धा पार्क पहुँच जाए और वहाँ उसे न पाकर वापस लौट पड़े। वस्तुतः आज वह किसी भी प्रकार की चूक नहीं होने देना चाहता था और मुकर्रर किए गए समय से पर्याप्त पहले ही बुद्धा पार्क के सामने खड़ा था। स्वाभाविक ही था कि रेहाना अभी वहाँ नहीं पहुँची थी। उसने सोचा कि अब क्या करे? एक बार उसके दिमाग में आया कि यहीं कहीं आसपास मँडराता रहे और नियत समय पर आकर बुद्धा पार्क के प्रवेश द्वार पर तैनात हो जाएगा रेहाना की आगवानी के लिए।

किंतु सवाल था कि वह कितनी देर आसपास मँडराता। वस्तुतः वह काफी पहले आ गया था। इतना कि शेष वक्त महज मँडराया नहीं जा सकता था। इतनी देर तक मँडराने पर वह निश्चय ही थक जाता, साथ ही उसकी ताजगी, स्फूर्ति और सौंदर्य के कमतर हो जाने का भी खतरा था। अतः वह बाकी समय किसी दूसरी तरह बिताने के बारे में सोचने लगा। उसने यह समाधान ढूँढ़ा कि क्यों न नजदीक के किसी साइबर कैफे में चला जाए। वहाँ वह नेट पर वक्त गुजारने के अलावा रेहाना को एक प्रेमपत्र भी मेल करेगा। इन दिनों उसके लिए यह टाइम पास का बेहतरीन तरीका था। यदा-कदा रेहाना भी उसे प्रेमपत्र मेल करती थी। जहाँ उसके प्रेमपत्र संदेश संक्षिप्त, अनलंकृत और शांत होते थे, वहीं प्रेमरंजन के संदेश कंप्यूटरीकृत कुंडली की भाँति कई-कई पृष्ठों के हो सकते थे। वे सजावटी शब्दों से लहलहाते हुए हाहाकार भरे होते थे। उसी प्रकार का पत्र ई-मेल करने का लक्ष्य लेकर वह साइबर कैफे में दाखिल हुआ।

साइबर कैफे के एयरकंडीशनर की ठंडक में वह काफी खुश महसूस कर रहा था। उसकी खुशी का कारण गर्मी से छुटकारा मिलने के साथ यह भी था कि एयरकंडीशन के रक्षाकवच में धूल-धक्कड़ से भी सुरक्षित था। बाहर सड़क पर खड़े होने अथवा इधर-उधर टहलने पर उसके क्लीन शेव्ड चेहरे पर, नई कमीज पर गर्द पड़ सकती थी। आँधी आ जाए तो शैंपू किए बालों की शान मिट्टी में मिल सकती थी। कौन ठीक,

किसी गँवार द्वारा पान खाकर उगली गई पीक उसके कपड़ों पर पड़ जाती या रेहाना की याद में खोए रहने के कारण गाफिल उसके पैर गोबर में, कीचड़ में, गड्ढ़े अथवा मेनहोल में चले जाते तो? तब रेहाना के साथ बहुप्रतीक्षित आज की शाम बरबाद होने से कौन बचाता! वह खुश-खुश कंप्यूटर के सामने बैठ गया।

कंप्यूटर ऑन था और स्क्रीन पर ऐश्वर्या राय थीं। राय को देखकर प्रेमरंजन की आत्मा बोली - "ऐश्वर्या तुम हो बड़ी सुंदर... मगर मेरी रेहाना?" उसने आह भरी और ऐश्वर्या राय के होंठ देखने लगा। उसका फैसला हुआ कि रेहाना के होंठ ऐश्वर्या के होंठों से भी अच्छे हैं - "रेहाना तुम्हारे होंठ कितने गुलाबी और पतले-पतले हैं, पर यही पतले होंठ बाथरूम में कितने भारी हो गए थे।"

उसने ऐश्वर्या की आँखें देखी तो बोला - "ऐ भूरी आँखों वाली ऐश्वर्या राय तुम मेरी रेहाना से मुकाबले में जीत नहीं पाओगी क्योंकि उसकी बड़ियारी आँखें काली कजरारी हैं।"

ऐश्वर्या के वक्ष देखकर उसने रेहाना के वक्ष का ख्याल किया और तड़फड़ाने लगा। उसने पाया कि उसके भीतर बिजली के तार हिल रहे हैं... आवाजें हो रही हैं... बिजली दौड़ रही है... घबराकर वह जल्दी-जल्दी की-बोर्ड पर उँगलियाँ चलाने लगा...

की-बोर्ड पर उँगलियाँ चलाते हुए वह बीच-बीच में घड़ी भी देख ले रहा था। पिछले बीस मिनट में चार बार घड़ी देख चुका था। जब पाँचवीं बार घड़ी देखने के लिए कलाई मोड़ी, ठीक उसी समय साइबर कैफे के मालिक ने फोन का रिसीवर पटका और दरवाजा खोलकर बाहर लपका। जितनी तेजी से वह गया था, उतनी ही तेजी से लौट आया। वह बदहवास लग रहा था। उसने जोर से शटर गिराया। न केवल इतना, बल्कि भीतर से ताला बंद करके अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

कैफे के भीतर ढेर सारे कंप्यूटर थे जिनके सामने नई उम्र के लड़के-लड़कियाँ बैठे थे। उनमें से किसी की समझ में मालिक की यह कार्रवाई नहीं आई। दुबली-पतली एक चश्मुद्दीन लड़की बौखला गई - "ऐ मिस्टर, यह क्या बदतमीजी है।" वह तमतमाकर अपने सेलफोन पर किसी का नंबर मिलाने लगी।

"दंगा होनेवाला है। समझ लो शुरू हो चुका है। बहुत भारी दंगा।" कैफे मालिक घबराया हुआ बोला।

'कहाँ हुआ है', 'क्यों हुआ है', 'मारकाट भी मची है या केवल लूटपाट', 'कौन ज्यादा भारी पड़ रहा है' - अनेक सवाल होने लगे। जिनके पास मोबाइल था वे उस पर जानकारी लेने की कोशिश करने लगे। कैफे मालिक भी लगातार फोन मिला रहा था। नंबर शायद व्यस्त था, इसीलिए बार-बार मिलाना पड़ रहा था। प्रश्नकर्ता खीझ रहे थे। चश्मुद्दीन चीखकर बोली - "आप जवाब क्यों नहीं दे रहे हैं?"

"कुछ पता हो तब जवाब दूँ न।" कैफे मालिक को भी ताव आ गया - "पता करने के लिए अखबार के दफ्तरों को फोन मिला रहा हूँ पर मिले तब न...।" वह स्वगत बोला - "पता नहीं क्या हालत है बाहर ?"

अब प्रेमरंजन गिड़गिड़ाया था - "मुझको यहाँ से जाने दीजिए। कृपया आप ताला खोलें, शटर उठाएँ ताकि मैं बाहर निकलूँ।" प्रेमरंजन को लग रहा था कि रेहाना बुद्धा पार्क पहुँच जाएगी या कहीं दंगे में फँस जाएगी। दोनों ही स्थितियों में उसे उसके पास रहना चाहिए। इस बार उसकी आवाज में अधिक कातरता थी - "प्लीज शटर खोल दीजिए, मैं जाऊँगा।"

लोग इस अप्रत्याशित प्रकरण की उपस्थिति से सकते में आ गए थे।

प्रेमरंजन ने अपनी टेर लगाई - "भाई साहब शटर...।"

कैफे मालिक भड़क गया - "मेरे बाप, बाहर फसाद मचनेवाला है और तुम्हें जाने की सूझ रही है।"

"जाना ही होगा मुझे। वैसे भी, अगर फसाद बढ़ गया तो आप इतने लोगों को यहाँ कब तक टिकाएँगे।"

"मैं क्यों टिकाऊँगा... मैं क्यों टिकाऊँगा...।" कैफे मालिक बोला - "लेकिन पता कर लूँ कि किस इलाके से जाना खतरनाक है किससे नहीं। ताकि आप लोग किसी मुसीबत में न फँसे।"

"मगर मेरे पास वक्त नहीं है। मुझे अभी निकलना है।"

"क्या आफत आई है?" कैफे मालिक ने चिढ़कर कहा और फोन मिलाने लगा।

अन्य लोग आपस में भिनभिन बातें करने लगे - पता नहीं चल पा रहा है कि बाहर क्या हो रहा है... बिना मालूम किए निकलना ठीक भी नहीं है...।

कैफे मालिक का फोन लग गया था, वह किसी से फुसफुसाकर बतिया रहा था।

चश्मुद्दीन लड़की ने सहानुभूतिपूर्वक प्रेमरंजन से पूछा - "निकलना बड़ा जरूरी है क्या ?"

"हाँ बहुत जरूरी है।" प्रेमरंजन को जल्दी में यही सूझा - "मेरे पिताजी काफी बीमार हैं, मौत उनके करीब खड़ी है।"

"पिता की तबीयत इतनी खराब थी तो यहाँ क्या करने आए थे?" कैफे मालिक ने उसे घूरा। फोन पर उसकी वार्ता समाप्त हो चुकी थी।

"यहाँ अपने भाइयों को, बहन को और दो चाचाओं को मेल करने आया था। ताकि उन्हें पता चल जाए कि पिताजी का अब कुछ ठीक नहीं है।" वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया - "मैं प्रार्थना करता हूँ... हाथ जोड़ता हूँ, मुझे जाने दीजिए। मुझे अपनी जान की बिल्कुल परवाह नहीं है, मुझे बस जीवन की अंतिम घड़ी गिन रहे अपने पिता की फिक्र है।"

सभी इस आधुनिक श्रवण कुमार से बहुत प्रभावित हुए। कैफे मालिक भी भावुक हो गया। उसने प्रेमरंजन के कंधे पर हाथ रखकर कहा - "चिंता मत करो मेरे दोस्त, मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

वह प्रेमरंजन को मकान के पिछले हिस्से में ले गया। वह एक पूजागृह था। वहाँ कुछ देवताओं की तस्वीरें तथा लक्ष्मी-गणेश की मूर्तियाँ रखी थीं जिनके गले में मालाएँ लटकी थीं। मालिक ने उन सभी को प्रणाम करके प्रेमरंजन से पूछा - "क्या हो? हिंदू?"

"मैं मुसलमान होता तो यह क्यों कहता कि 'मेरे पिताजी काफी बीमार हैं, तब मैं कहता मेरे अब्बा काफी बीमार हैं।"

"वही तो... वही तो...।" कैफे मालिक ने फुसफुसाकर कहा। वह प्रेमरंजन को लेकर दाएँ मुड़ गया। थोड़ा आगे बढ़ने पर एक दरवाजा मिला। दरवाजे की सिटकनी तक पर धूल की मोटी पर्त जमा थी जिससे लगता था कि घरवालों का सफाई से कोई वास्ता नहीं है या यह दरवाजा बहुत दिनों से खोला नहीं गया है।

मालिक ने सिटकनी गिराकर दरवाजे को जरा सा खोला और बाहर झाँका। बाहर न सुनसान था न भगदड़ थी, उसने दरवाजा ज्यादा खोल दिया - "इधर से बाएँ मुड़ते हुए निकल जाओ, आगे रिहायशी बस्ती है।" वह मुस्कराया - "और हिंदुओं की है।" जल्दी

ही चिंतित हो गया - "लेकिन आगे जाने पर मुसलमानों का इलाका पड़ेगा, बस उसे किसी तरह पार करना होगा। अगर उसे सकुशल पार कर गए तब कोई चिंता की बात नहीं। क्योंकि उस बस्ती से लगा हुआ ही थाना है। थानेदार भी हिंदू है। बड़ा जालिम इनसान है भइया वह। दंगों में 'उन' सालों की तो बजाकर रख देता है। उससे अपने पिता की तबीयत के बारे में बताना, वह जरूर तुम्हारी मदद करेगा। अच्छा... तुम्हें जाना किस इलाके में है ?"

प्रेमरंजन जवाब देने के पहले दरवाजे के बाहर उस पार निकल गया। फिर बोला - "बुद्धा पार्क।"

"बुद्धा पार्क?" कैफे मालिक चौंका - "वहाँ क्या काम है ?"

"कुछ नहीं, बस यूँ ही... अच्छा चलता हूँ।" उसने कैफे मालिक से हाथ मिलाया - "मैं आपका यह एहसान कभी नहीं भूलूँगा।"

"एहसान की क्या बात।" कैफे मालिक भावुक हो गया - "तुम्हारे पिताजी मेरे भी पिता तुल्य हैं।"

कैफे मालिक से विदा लेकर वह उस बस्ती की तरफ बढ़ा जो हिंदुओं की थी, जिसके बाद एक मुस्लिम बस्ती को और उससे सटे हुए थाने को आना था। जिसका कि थानेदार बड़ा जालिम इनसान था।

प्रेमरंजन कुछ दूर ही बढ़ा होगा कि एक नई समस्या आ गई। उसने महसूस किया कि उसको बहुत तेजी से पेशाब लगी हुई है। उसने इधर-उधर नजर दौड़ाई। वह एक चौराहा था जहाँ महाराणा प्रताप की घोड़े पर सवार एक मूर्ति थी। इसे भगवान भक्त सरकार ने अभी हाल में बनवाया था। निश्चय ही यहाँ पेशाब करने की गुंजाइश नहीं थी। वैसे भी दंगा तो नहीं लेकिन एक बदहवासी, अफरातफरी माहौल में थी। चारों तरफ डर और संशय रेंग रहे थे...। ऐसे में उसको पेशाब लग गई थी। हालाँकि वह रास्ता चलता जा रहा था लेकिन पेशाब करने लायक स्थान भी तलाशता जा रहा था। जाहिर है वह स्थान अभी तक मिला नहीं था। वह फिर एक चौराहे पर था। यहाँ भी मूत्रालय नहीं, किसी रणजीत सिंह जू देव की तलवार लहराती मूर्ति थी, इसे भी भगवान भक्त सरकार ने बनवाया था। प्रेमरंजन के हृदय से गाली निकल गई - "ये साली कैसी गधा सरकार है जो मूर्तियाँ बनवाती है, मूत्रालय नहीं।" फिर उसने अपने को कोसा - 'मैं भी कितना बेवकूफ और अदूरदर्शी हूँ। क्या हुआ कि ज्यादा जोर से नहीं लगी थी, निकलने से पहले मुझे साइबर कैफे में फारिग हो लेना चाहिए था।" उसमें

प्रश्न कौंधा - "जरूरी नहीं है कि साइबर कैफे में टायलेट रहा हो।" उत्तर भी उसने स्वयं दिया - "निश्चित रूप से टायलेट रहा होगा। जब साइबर कैफे घर में था और घर में मंदिर था तो टायलेट भी जरूर होगा। गलती मेरी है कि मुझको सूझा ही नहीं कि निकलने से पहले हल्का हो लेना चाहिए। उसी भूल का खामियाजा भुगत रहा हूँ अब - ढूँढ़ रहा हूँ मूत्रालय या कोई गंदी सी जगह।"

वह अपनी समस्या को जितना ही ज्यादा स्थगित कर रहा था, वह उतनी ही बढ़ती जा रही थी। रोकते-रोकते आखिर वह पुरानी हिंदू बहुल बस्ती में आ पहुँचा। साइबर कैफे के मालिक ने बताया था कि यहाँ रुकना नहीं है, सीधे आगे बढ़ जाना है। लेकिन वह उस बिंदु पर पहुँच चुका था कि जहाँ आगे बढ़ने के बजाय लघुशंका से निजात अधिक आवश्यक था। चूँकि यह रिहायशी बस्ती थी, इसलिए यहाँ सार्वजनिक शौचालय होना और उसे ढूँढ़ना कठिन काम था। इसके लिए किसी के घर का दरवाजा खटखटाना उससे भी कठिन था। इसलिए उसने अपनी समस्या से मुक्ति के लिए एक जननिरपेक्ष गंदी जगह की तलाश में चारों तरफ का विहंगावलोकन किया..।

यह एक पुराना मोहल्ला था जिसके मकान अमूमन पक्के और एक दूसरे से सटे हुए थे। बिजली के नंगे तारों का संजाल हर ओर छतराया हुआ था। इधर-उधर गलियाँ थीं। गली-सड़क कहीं पर भी गायें मिल सकती थीं। छतों पर बंदर कूद रहे थे। प्रेमरंजन ने छतों से ऊपर देखा तो पाया कि दो मंदिरों के कलश चमक रहे हैं और कहीं किसी पीपल के पेड़ का ऊपरी हिस्सा हरहरा रहा है।

लेकिन उसे शौचालय या जननिरपेक्ष गंदा स्थान कहीं नहीं दिखाई दे रहा था। उसने बेचैनी से फिर आसपास देखा - घरों के सामने से नालियाँ गई थीं। हल्का होने के लिए यह एक उपयुक्त जगह थी लेकिन मुश्किल थी कि उनके इर्द-गिर्द मानव उपस्थिति थी। उसका चेहरा असहायता, तनाव, घबराहट और एक अजीब ढंग के कंपन से भर उठा। उसे कुछ न सूझा तो वह इस गली से उस गली में भागने लगा, और अंततः एक बंद गली के आखिरी मकान के कोनेवाले हिस्से की दीवार के सामने खड़ा होकर पेशाब करने लगा।

पेशाब करते हुए प्रेमरंजन ने देखा - दीवार पर कुछ पोस्टर लगे थे और एक इबारत लिखी थी। उसने पहले इबारत पर गौर किया। लिखा था - देखो गधा पेशाब कर रहा है। उसने पहले उस इबारत के चारों ओर अपने मूत्र की मेखला बना दी। इसके बाद उसने एक विजेता की भाँति पोस्टरों की तरफ देखा। दीवार पर तीन रंगीन पोस्टर लगे थे। ये भगवान भक्त पार्टी की किसी महारैली से संबंधित पोस्टर थे। उन तीनों पर दो

नेताओं की तस्वीरें थीं। वह मुस्कराया - "ओह आप हैं। आपकी पार्टी शौचालय नहीं बनवा सकती तो लीजिए हमारी सप्रेम भेंट।" उसने मूत्रांग को ऊपर उठाकर निशाना साधा - एक ही बार में दोनों पर प्रहार गिरा। प्रेमरंजन पर जैसे कोई जुनून सवार हो गया था। उसने अपने मूत्रांग को दाएँ-बाएँ ऊपर-नीचे हर कोण पर ले जाकर उन दोनों पर हमला बोला। नतीजा था कि जब वह निवृत्त हुआ तो तीनों पोस्टर बुरी तरह भीग चुके थे।

अब जाकर वह सामान्य हो सका था। जैसे शरीर में घुसी कोई बीमारी अचानक निकल गई हो। वह थोड़ा इधर-उधर मुड़ते हुए बढ़ा कि फिर मुहल्ला सामने था। वैसे थोड़ी देर पहले वह उड़ती-पुड़ती निगाह से मुहल्ले को देख चुका था, मगर तब वह बेचैनी में था और हल्का होने के लिए गंदा जननिरपेक्ष स्थान ढूँढ़ रहा था, अतः उस समय मुहल्ले को गौर से देखने के लिए उसके पास कहाँ गुंजाइश थी। अब उसने मुहल्ले को देखा तो उसकी घबराहट बढ़ी - मुहल्ले में सनसनी पसरी हुई थी। लोग छोटे-छोटे समूहों में इकट्ठा होकर फुसफुसा रहे थे। महिलाएँ घर के भीतर प्रवेश द्वार से सटकर खड़ी थीं और बाहर के वातावरण की थाह लेने की कोशिश कर रही थीं। बच्चे बार-बार बाहर निकलने का यत्न करते थे लेकिन स्त्रियाँ उनको भीतर धकेल दे रही थीं...।

दूर कहीं से धाँ...य... की आवाज आई। लोग डरकर अपने चबूतरे पर चढ़ गए या घर के भीतर घुस गए।

वह भी घबराया मगर क्या करता, उसका घर वहाँ था नहीं। दूसरी बात जब उसने धाँय की आवाज सुनी और मुहल्ले में अफरातफरी फैलते हुए देखा तब सबसे पहले उसे अपनी फिक्र हुई लेकिन अगले ही क्षण अपने से भी ज्यादा रेहाना की फिक्र हुई। जैसे धाँय रेहाना पर हुआ हो- वह बदहवासी से भर उठा। उसने घबराई आवाज में अपने घर के सामने खड़े एक आदमी से पूछ - "बुद्धा पार्क किधर है ?"

उस आदमी ने आश्चर्य से उसे देखा - "जाना कहाँ है ?"

"बुद्धा पार्क।"

"पार्क के पास किस जगह?"

"पार्क में।" उस व्यक्ति को अत्यंत उपेक्षा से देखकर वह आगे बढ़ गया। आगे एक चबूतरे पर खड़े दूसरे व्यक्ति से उसने दरियाफ्त की - "कहो भइया, ये बुद्धा पार्क किस रास्ते से जाया जाएगा ?"

उस व्यक्ति का रवैया भी उसे नामाकूल दिखा। वह चुप लगा गया। अब उसने किसी अन्य से बुद्धा पार्क का रास्ता न पूछकर दौड़ना शुरू कर दिया। लेकिन तुरंत उसे डर लगा कि इस तरह दौड़ते देखकर लोगों को उस पर शक हो सकता है। दौड़ना रोककर वह तेज-तेज चलने लगा...। जिधर मन हो जाता, उधर वह मुड़ जा रहा था...।

जल्द ही उसने पाया कि वह मुस्लिम बहुल मोहल्ले में आ गया है।

यहाँ भी छोटे-छोटे जत्थे आपस में फुसफुसा रहे थे। कुछ लोग खामोश खड़े थे। चार-छह युवक एकाएक तेजी से कहीं जाते, और उतनी तेजी से लौट आ रहे थे। यहाँ स्त्रियाँ प्रवेश द्वार के पास नहीं खड़ी थीं, वे खिड़कियों की झिर्री से यदा-कदा दिख रही थीं। जिन मकानों पर छतें थीं, उनकी छतों पर भी कभी एक, दो या कुछ ज्यादा सिर स्थिर अथवा चलते हुए दिखते थे, और फिर गुम हो जाते थे। अजीब दहशत और आक्रामकता तैर रही थी। प्रेमरंजन खौफजदा हो गया - "मैं कहाँ फँस गया। काश मैं किसी तरह ये इलाका पार कर जाता।" उसे लगा कि अभी किसी घर से गोली दगेगी जो उसको बेधती हुई निकल जाएगी। उसने सोचा - "कौन ठीक, किसी छत या किसी दरवाजे से फेंका गया बम मेरे ऊपर गिरे, मैं चिथड़े-चिथड़े हो जाऊँ। तब क्या होगा...?"

'तब क्या होगा'- यह उसका प्रिय खेल था जो रेहाना से मुहब्बत शुरू हो जाने के बाद शुरू हुआ था। जिस गति से उसका रेहाना से प्रेम प्रगाढ़ होता गया, उसी गति से यह खेल भी जोर पकड़ता गया। इस खेल में वह सोचता कि वह मर गया है। फिर कल्पना करता कि उसकी मौत के बाद रेहाना किस प्रकार शोक प्रकट कर रही है। हालाँकि प्रायः ऐसा होता कि जब वह अपने भावी शव के पास काले लिबास में गोरे मुखड़ेवाली रेहाना के रोने-बिलखने का तसव्वुर करता तो रेहाना के बजाय बाई एवं गठिया की मरीज उसकी माँ प्रकट हो जाती - छाती पीटकर, धरती पर सिर पटककर, पछाड़ मारकर रोती हुई माँ। माँ की यह दुखाभिव्यक्ति उसे बिल्कुल पसंद नहीं आती थी। क्योंकि उसकी आकांक्षा थी कि उसकी मृत्यु पर संसार में सर्वाधिक दुखी रेहाना हो। मगर रेहाना अधिक से अधिक थोड़ी सी उदासी और हल्की नम आँखों से ही अपने गम का इजहार करती। ऐसी स्थिति में एकाध बार प्रेमरंजन के भीतर यह संशय पनपा कि क्या रेहाना हिंदू-मुसलमान के चक्कर में आ गई है जो मेरी मौत का ठीक से मातम भी नहीं मना रही है। पर उसने तुरंत अपने को तसल्ली दी - "नहीं ऐसी बात नहीं है। रोने-धोने के मामले में मेरी देहाती माँ की बराबरी रेहाना कैसे कर सकती है। माँ की तरह बुक्का फाड़कर कोई भी पढ़ा-लिखा आदमी रोने नहीं जाएगा। वैसे भी भारतवर्ष में प्रेमिकाओं को शोक में रोने-चिल्लाने की स्वतंत्रता कहाँ उपलब्ध है। प्रेमी की मौत

पर उनके रोने का मतलब है रँगे हाथ पकड़ लिया जाना। बस, यही कारण है कि वे जोरदार तरीके से नहीं रोतीं, बस जरा-सा उदास हो जाती हैं।

किंतु आज भिन्न स्थिति थी। आज जब उसने सोचा कि कोई बम उसके चिथड़े कर दे, तब क्या होगा? - तो यह कोई रोमांटिक कल्पना न थी, बल्कि तनावपूर्ण परिस्थिति में उपजा एक स्वाभाविक खौफ था। अतः उसे न रेहाना की याद आई न माँ की। केवल धमाका, रक्त, मांस के लोथड़े ख्याल में आए।

"...बरखुरदार कहाँ चले जा रहे हो...। फसाद हो सकता है, फौरन से पेश्तर अपने घर पहुँच जाओ - कयामत आनेवाली है।" यह एक बूढ़ा राहगीर था।

प्रेमरंजन को डर लगा कि वह बूढ़ा जो लुंगी और जालीदार टोपी पहने है, इसका घर यहीं कहीं पास में होगा, यह अभी रुकेगा और उसकी पीठ में छूरा घोंप देगा। उसकी रीढ़ में जैसे कुछ रेंग गया हो। वह सतर्क होकर धीरे-धीरे चलने लगा ताकि बूढ़ा आगे बढ़ जाए और उसकी पीठ में छूरा न घोंप सके। पर उसके चाल धीमी करने पर वह भी धीमे चलने लगा - "मियाँ खौफ खा रहे हो, हिंदू हो क्या?"

प्रेमरंजन को लगा, मौत उसके बगलगीर है। दहशत की झुरझुरी उसके पूरे शरीर में रेंग गई।

बूढ़े ने दुबारा पूछा - 'मियाँ बताए नहीं कि हिंदू हो क्या?"

प्रेमरंजन में डर अधिक गाढ़ा हुआ, मगर उसने खुद को सँभालते हुए गोलमोल जवाब दिया - "अगर हूँ तो क्या, नहीं हूँ तो क्या ?"

"हिंदू नहीं हो तब इस मोहल्ले में इतना आहिस्ता चलने में कोई हर्ज नहीं है पर अगर हिंदू हो, तब हर्ज है। देखो मियाँ, मेरा दंगों की दरिंदगी का पुराना तजुर्बा है। इसमें नेक और डरपोक इनसान पहले मारा जाता है। तुम वैसे ही लग रहे हो। इसीलिए मशविरा दे रहा हूँ कि जल्दी अपने घर पहुँच जाओ। हालाँकि बलवा जब आग पकड़ लेता है तब घर भी कहाँ महफूज रह जाता है। पर आफत की घड़ी में घर बाहर से बेहतर ही होता है...।"

"मगर मैं रास्ता भटक गया हूँ।" कहकर प्रेमरंजन पछताया। उसे लगा, रास्ता भटकने की बात कहकर वह ज्यादा असुरक्षित हो गया है।

"तुमको जाना किधर है?"

"बुद्धा पार्क।"

"देखो, सामने जो बिजली का खंभा दिख रहा है, वो वाला जिसमें बत्ती नहीं जल रही है।" प्रेमरंजन ने चकित होकर उसे देखा। साइबर कैफे से निकलने के बाद यह पहला शख्स था जो बुद्धा पार्क को गंतव्य बताने पर चौंका नहीं था, न ही कोई तफ्तीश की थी। वह सीधे बुद्धा पार्क का रास्ता बताने लगा था - "खंभे से आगे बढ़ने पर एक मोड़ बाएँ बाजू, वहाँ मुड़कर सीधे आगे बढ़ जाना। करीब एक फर्लांग चलने पर 'बुद्धा पारक' वाली सड़क आ जाएगी।" इस कथन के साथ ही वह रुक गया - "मेरा सफर खत्म हुआ। यहीं करीब में मेरा गरीबखाना है। मैं बुद्धा पारक वाली सड़क तक चलता मगर माफ करना जरा जल्दी में हूँ। क्या मालूम, दंगा भड़क ही जाए, तो कुछ तैयारियाँ कर लूँ।"

'दंगा' और 'तैयारियाँ' लफ़्जों को सुनकर वह उसे शक से देखने लगा। बूढ़ा शायद उसके शक को भाँप गया। प्रेमरंजन की पीठ पर हाथ रखकर हँसने लगा - "गलत सोच रहे हो। 'तैयारियाँ' से मेरा मतलब है कि दंगा होगा तो यहाँ कर्फ्यू जरूर लगेगा। इसलिए घर में कम-से-कम आटे के दो कनस्तर भरे होने चाहिए और चार-पाँच किलो आलू भी। चटनी के लिए टमाटर, हरी मिर्च, धनियाँ की पत्ती इकट्ठा हो जाए, इसके लिए तरद्दुद करूँगा। कर्फ्यू का क्या ठिकाना... जाने कितने दिन चले...। अच्छा, मेरी मंजिल आ गई, खुदा हाफिज।" वह एक अधटूटे घर में घुस गया।

प्रेमरंजन के मन में विचार उठा - "यह बूढ़ा पता नहीं मुझको बुद्धा पार्क भेज रहा है या बूचड़खाना।" तभी कहीं बम फटने की आवाज आई और न जाने कहाँ से कई आदमी गली में प्रकट हुए और भागने लगे। वह भी भागने लगा। दिलचस्प यह था कि वह उसी 'बूढ़े' के बताए दिशानिर्देशों के मुताबिक दौड़ रहा था जिसके बारे में कुछ क्षण पहले शुबहा था कि वह उसको बूचड़खाना तो नहीं भेज रहा है...।

गौरतलब है कि जब वह इस बस्ती में भाग रहा था तो उसकी भरपूर इच्छा तथा कोशिश थी कि वह मुसलमान दिखे...।

यूँ तो मुसलमान दिखना क्या, इस्लाम कबूल कर लेने का ख्याल भी उसमें एक बार सिर उठा चुका था। यह तब का वाकया है जब वह ग्यारहवीं कक्षा का छात्र था और दसवीं में पढ़ रही अपनी एक दूर के मामा की लड़की पर आसक्त था। इस प्यार का विकास यहाँ तक हुआ था कि उसने मामा की लड़की के हाईस्कूल बोर्ड परीक्षा के लिए भरे गए फार्म से उसका पासपोर्ट साईज का फोटो चुपके से नोच लिया था और उस फोटो को अकेले में सीने से लगाकर आहें भरता था। उन दिनों जब वह उससे अपने

विवाह का ख्वाब देखता तो संकट आ जाता कि इस रिश्ते को जमाना स्वीकार नहीं करेगा। उस क्षण वह निर्णय लेता था कि वह मुसलमान बन जाएगा, जिनमें ऐसे रिश्ते की मनाही नहीं होती।

लेकिन निर्णय के क्रियान्वयन की नौबत नहीं आई। क्योंकि स्नातक में पढ़ते हुए ही वह लड़की एक दिन डोली (कार) में सवार होकर अलीगढ़ स्थित अपनी ससुराल चली गई थी।

इसके बाद अलीगढ़ में जब भी दंगा होता था, वह मामा की लड़की की हिफाजत के लिए अलीगढ़ जाने के लिए व्याकुल होने लगता था। वैसे वह गया कभी भी नहीं, क्योंकि उसके पास न मामा की लड़की की ससुराल का समुचित पता रहता था न जाने के लिए किराया भाड़ा। हालाँकि वह ख्यालों ही ख्यालों में मामा की लड़की को दंगाइयों से कई बार बचा चुका था। जब भी वह कल्पना लोक में मामा की लड़की को बचाने के लिए निकलता था, उसके सामने यह मुश्किल आ खड़ी होती थी कि मामा की लड़की को बचाने से पहले वह स्वयं दंगाइयों के बीच फँस गया तो क्या करेगा। इसका हल ढूँढ़ लेने के बाद वह मुस्कराया था। उसने जो युक्ति ढूँढी थी, वह इस प्रकार थी...।

...बचपन में दशहरे के मेले में उसने नकली मूँछ खरीदी थी जिसकी क्लिप को नाक में फँसाकर वह घर में दाखिल हुआ तो छोटी बहन भय से चीख पड़ी थी। उसने हँसते हुए क्लिप ढीली कर के मूँछ उतारकर छोटी बहन को तसल्ली दी थी और फिर लगाकर राणा प्रताप की तरह ऐंठने लगा था। बहन इस बार चीखी नहीं, बल्कि उसकी मूँछ पर झपटी थी।

इसी प्रकार बचपन से कैशोर्य में पहुँचने पर स्कूल में 15 अगस्त के अवसर पर आयोजित नाटक में वह अलाउद्दीन खिल्जी बना था। खिल्जी के गेटप में उसे केवल दाढ़ी लगाई गई थीं, मूँछें गायब थीं। और वह जान गया था कि जिस तरह बिच्छू के डंक जैसी नुकीली मूँछें खाँटी हिंदुत्व का परचम हैं उसी तरह सफाचट मूँछ किंतु दाढ़ीवाला चेहरा मुसलमान होने का पुख्ता सबूत है। अलीगढ़ हो, आजमगढ़, अयोध्या हो या अहमदाबाद - दंगे में इनसान के पास नकली दाढ़ी और बिच्छू के डंकवाली नकली मूँछ लगाने के लिए एक सफाचट चेहरा होना चाहिए। एक तरह के दंगाई दिखें तो दाढ़ी मूँछ दोनों लगाकर शिवाजी बने रहो या दाढ़ी उखाड़कर केवल मूँछ में महाराणा प्रताप हो जाओ - सुरक्षित रहोगे। दूसरी तरह के दंगाइयों के दिखने पर मूँछ जेब में रखकर केवल दाढ़ी लगा लो।

और इस वक्त जब मुस्लिम बहुल इलाके से बुद्धा पार्क की तरफ बढ़ता हुआ वह अपने को मुसलमान दिखाने का यत्न कर रहा था, उसके मन में रक्षाकवच के रूप में दाढ़ी-मूँछ का विचार इस रूप में प्रकट हुआ - "कितना अच्छा होता कि इस समय मेरे पास नकली दाढ़ी-मूँछ होती। नकली दाढ़ी-मूँछ को मैं अपने सफाचट चेहरे पर लगाता, जो रेहाना को बेहद प्यारा है। मैं इस्लाम के नाम पर लड़नेवाले बलवाइयों के दिखने पर अपनी नकली मूँछ उखाड़ लेता लेकिन हिंदूवादी फसादियों के मिलते ही मैं पुनः अपनी मूँछ लगाकर उसे ऐंठने लगता।" प्रेमरंजन को दाढ़ी-मूँछ के ख्याल से उबारा बुद्धा पार्क ने। बुद्धा पार्क अब ठीक उसके सामने था। इस प्रकार कि कहा जा सकता है कि वह स्वयं बुद्धा पार्क के ठीक सामने था। वह बड़ी तीव्रता से आसपास के भूगोल में रेहाना को ढूँढ़ रहा था। किंतु वहाँ रेहाना न थी। वहाँ सिर्फ भगदड़ थी। कुछ लोग तेज-तेज भागे जा रहे थे, कुछ भागने की तैयारी कर रहे थे...।

एक चाट बेचनेवाला अपने ठेले को भगाता चला जा रहा था। ठेले की अति गति के कारण बताशे और दोने ठेले से गिर-गिर पड़ रहे थे और चटनियाँ छलक-छलक पड़ रही थीं।

बहरहाल रेहाना जब कहीं नहीं दिखी तो प्रेमरंजन ने सोचा कि रेहाना पार्क के भीतर न चली गई हो ? वह आई हो, और उसे ढूँढ़ने पार्क के भीतर पहुँच गई हो। वह बगैर वक्त गँवाए टिकट काउंटर पर गया। वहाँ बने बिलोक्के में हाथ डालकर बोला - "भइया एक टिकट दे दो।"

बिलोक्के के उस पार बैठे व्यक्ति ने चिड़चिड़ाकर उसका हाथ ठेल दिया - "एकदम पगलेट हो क्या? अरे घोंघा बसंत भागो, दंगा होनेवाला है। मैं खुद भाग रहा हूँ।" वह सचमुच बाहर निकल आया और भागने लगा।

निराश प्रेमरंजन ने पार्क के गेट पर नजर डाली। वहाँ गेट कीपर अपनी जगह पर खड़ा था। उसने गेट कीपर के पास जाकर पूछा - "आप नहीं भाग रहे हैं ?"

"मैं कहाँ भागूँ। मैं इसी पार्क की, वो ट्यूबेल के बगलवाली कोठरिया में रहता हूँ। रात में चौकीदारी भी करता हूँ पार्क की।"

प्रेमरंजन ने मन-ही-मन कहा - "साले चैकादारी क्या करते होगे, टाँग फैलाकर सोते होगे।" लेकिन बोला यह - 'जरा पार्क में घुसने देंगे ?"

"पार्क में घुसकर क्या करोगे, झूला झूलोगे?" उसने व्यंग्य कसा।

"नहीं।" प्रेमरंजन ने गला साफ किया - "मेरा पर्स छूट गया है भीतर।"

"देखो साफ बात, मैं बिना टिकट किसी को अंदर नहीं जाने देता।"

गेटकीपर ने अपने कर्मचारी जीवन में ड्यूटी के प्रति पहली बार ऐसी मुस्तैदी दिखाई। प्रेमरंजन समझ गया कि चूक हो गई और अब यह उसके तथाकथित पर्स को हड़पने के लोभ में पड़ गया है।

प्रेमरंजन की बुद्धि सक्रिय हुई। उसने फुसलाने का अभिनय करते हुए गेट कीपर से कहा - "टिकट की क्या बात है भाई साहब, आप मेरे पर्स के सारे रुपये ले लीजिएगा। मुझे, बस पर्स में रखे एक जरूरी कागज से मतलब है।"

गेटकीपर ने उसके वादे को तौला, फिर कहा - "ठीक है, आ जाओ, चलो दोनों मिलकर खोजते हैं।"

उसने पार्क में घुसने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि पीठ पर एक स्पर्श पड़ा। उसने गरदन मोड़ी - रेहाना थी। घबराई हुई थी, हाँफ रही थी...।

प्रेमरंजन ने कहा - "अस्सलाम वलैकुम।"

"वालैकुम सलाम।" रेहाना की साँसें संयत नहीं हो सकीं - "अच्छा हुआ तुम मिल गए, इधर तो कुछ ज्यादा ही टेंशन दिख रहा है...।

रेहाना शलवार-कुर्ता पहने हुए थी। आँखों पर धूप का काला चश्मा था। चश्मे की वजह से आँखें साफ-साफ दिख नहीं रही थीं लेकिन चेहरे की त्वचा और होंठों की गति उसके भय को बयान कर रही थी। उसकी दाईं आँख के नीचे - चश्मे के शीशे के ठीक नीचे - की जगह बीच-बीच में फड़क जा रही थी।

"घबराओ मत रेहाना, मैं हूँ तुम्हारे साथ।"

"मुझको घर जाना है।" रेहाना बोली।

"सोचा तो कुछ और था पर इन सांप्रदायिक शक्तियों से इनसान की खुशी देखी जाए तब न। चलो मैं तुमको तुम्हारे घर पहुँचा आता हूँ।"

"नहीं...नहीं...। मेरे साथ चलने पर खतरे में फँसोगे।

"अकेली जाओगी... यह जिद ठीक नहीं है...।"

"जानती हूँ... अकेली जाने पर बचना मुश्किल है लेकिन कोई साथ रहे तब भी क्या बच जाऊँगी?" वह रुआँसी हो गई। उसकी आवाज में ऐसी बेबसी और व्यथा थी कि प्रेमरंजन विकल हो उठा - "रेहाना, मैं मर जाऊँगा लेकिन तुम्हें कुछ नहीं होने दूँगा।" वह कुछ और भी कहना चाहता था लेकिन उसे कोई अच्छा वाक्य नहीं मिल सका, इसलिए वह यही कहने लगा - "मैं तुमको बहुत प्यार करता हूँ रेहाना। सारी दुनिया में तुमको मैं सबसे ज्यादा चाहता हूँ।" वह आगे बोलता, उससे पहले उसको अहसास हो गया कि यह सब बोलकर वह बेवक्त की शहनाई बजा रहा है। पर न चाहते हुए भी उसकी जबान फिसल ही गई - "मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।"

"अल्लाह कसम।" इस कठिन समय में भी रेहाना को मजाक सूझ गया।

"अल्ला कसम।"

"तुम अल्लाह की इबादत नहीं करते हो... भगवान, ईश्वर..."

"चलो भगवान कसम।"

"कसम कहने से भगवान नाराज होंगे, सौगंध बोलो।"

अब जाकर प्रेमरंजन को पता चला कि रेहाना उसकी घिसाई कर रही है। लेकिन जो भी हो, इससे रेहाना का तनाव कुछ घट गया था। प्रेमरंजन को राहत महसूस हुई, उसने इधर-उधर देखा - फिलहाल लूटपाट, हत्या, आगजनी, नारेबाजी नहीं थी। साइबर कैफे से यहाँ बुद्धा पार्क तक की यात्र में भी कहीं हिंसा नहीं थी। एक धाँय और एक बम की आवाज को छोड़कर बाकी कोई खतरनाक वारदात नहीं हुई थी। और यह भी मुमकिन है कि न गोली छूटी हो न बम फटा हो - महज दो तगड़े पटाखे दगे हों। उसने रेहाना को समझाना शुरू किया - "देखो हालात अभी ज्यादा नहीं बिगड़े हैं। यह भी हो सकता है कि लोग किसी अफवाह के कारण भाग रहे हों। जो भी हो, माहौल इतना खराब नहीं है कि मैं तुमको तुम्हारे घर तक न पहुँचा सकूँ।"

रेहाना ने उसे प्यार से देखा फिर कुछ सोचने लगी वह।

"क्या सोच रही हो?"

"मुझे एक मोबाइल चाहिए।"

प्रेमरंजन ने जेब में हाथ डाला जैसे मोबाइल निकालने वाला हो पर उसके हाथ उसी प्रकार जेब में पड़े रहे - "रेहाना नौकरी पाने पर मैं सबसे पहला काम करूँगा कि दो मोबाइल खरीदूँगा, एक तुम्हारे लिए, एक अपने लिए...।"

"एक ही तरह का और एक ही कलर का दोनों मत लेना, वर्ना अपना पहचानने में दिक्कत होगी।" रेहाना को हँसी आ गई - "अरे बाबा मुझे 'अभी' अपने घर फोन करना है।"

वह स्पाइडर मैन की तरह तत्परता से घूमा और भगदड़ के बीच से किसी का मोबाइल हासिल कर लाया - "लो बात करो, नंबर मैंने मिला दिया है।"

रेहाना ने मोबाइल अपने कान से लगाया तो प्रेमरंजन उसका कान देखने लगा - आह कितना सुंदर कान।

तब तक मोबाइल का मालिक भी पास आकर खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद रेहाना से अपना मोबाइल पाकर वह चलता बना।

रेहाना ने आँखें बंद कर लीं, जैसे कोई घाव दब गया हो।

"क्या हुआ ?"

रेहाना चुप रही। कुछ क्षण बाद उसने आँखें खोलीं - "बात नहीं हो सकी।"

"क्यों?"

"मेरे घरवाले अपना घर छोड़ चुके हैं।"

"क्यों?"

"माहौल खराब होते ही हम लोग घर छोड़ देते हैं।"

"तब?"

"अब मुझे अपने नहीं मामू के घर जाना होगा। वहीं अम्मी, अब्बू और भाई जान थोड़ी देर बाद पहुँचेंगे।"

"मामू नहीं घर छोड़ते।"

"नहीं, वे मुस्लिम इलाके में रहते हैं।"

"कहाँ रहते हैं तुम्हारे मामू?"

"क्या करोगे जानकर। वहाँ तुम्हें नहीं चलना है, चलोगे तो बीच रास्ते में ही मार दिए जाओगे। बच गए तो मामू के मुहल्ले में...।" आगे के शब्द प्रेमरंजन सुनता, उसके पहले ही पुलिस की गाड़ियों के साइरन की तेज चीखों ने रेहाना की आवाज को दफ्न कर दिया।

गाड़ियों से पुलिस के जवान उतर रहे थे। पल भर में वे चारों तरफ फैलकर अपनी-अपनी पोजीशन लेने लगे। घुड़सवार सिपाहियों का एक काफिला भी आता हुआ दिखा। खूब ऊँचे कद के स्वस्थ और चमकते हुए घोड़े थे। उनकी टापों से दिन खुंद गया हो जैसे, शाम उतरने लगी थी।

रेहाना काँपने लगी। थोड़ी देर पहले उसकी दाईं आँख के नीचे जो जगह रुक-रुककर फड़क रही थी वह अब लगातार फड़कने लगी।

प्रेमरंजन ने इसे देखा - "डरने की बात नहीं। देखो, पुलिस आ गई है।"

रेहाना ने कोई जवाब न देकर उसे घूरा और उसे छोड़कर चल दी।

प्रेमरंजन की समझ में न आया कि आखिर क्या बात हो गई जो रेहाना उसे छोड़कर चली जा रही है। वह तेजी से आगे बढ़कर रेहाना के साथ चलने लगा -"रेहाना...रेहाना...।" तब तक रेहाना आगे बढ़ गई और वह पीछे छूट गया। रेहाना आज पहली बार इतना तेज चल रही थी। उसने पुनः उसका साथ पकड़ा - "डरो मत रेहाना... अब तो पुलिस...।"

"ये क्या पुलिस-पुलिस लगा रखे हो।" वह रुक गई। एक-एक लफ्ज पर जोर देते हुए बोली - "पुलिस सिर्फ हिंदुओं के लिए है।" अगला वाक्य उसने फुसफुसाकर कहा - "हमारे लिए ये कातिल हैं। इन सभी की आँखों को देखो, कैसे वहशत से चमक रही हैं।"

प्रेमरंजन ने अवाक रेहाना को देखा। उसे वह बिल्कुल अजनबी सी लगी। जैसे यह कोई दूसरी रेहाना थी। वह खब्तुलहवास सा बोला - "ये क्या कह रही हो तुम... हिंदू मुसलमान...।" उसने एक बार फिर एक लचर वाक्य कहा - "मुहब्बत करने वाले हिंदू मुसलमान की बात नहीं करते हैं।"

रेहाना की आँखों की पुतलियाँ गोलाई में नाचीं - "दंगे मुहब्बत की कब्रगाह होते हैं। इस वक्त हकीकत यही है कि मैं मुसलमान हूँ और पुलिस की संगीनों के साये में तुम जितने महफूज हो मैं उतनी ही खतरे में।"

कोई छोटा-सा सनसनाता हुआ पत्थर उनकी बगल से जाकर एक दफ्तर के पास गिरा। जैसे परिंदों के झुंड पर पत्थर गिरता है तो सारे अपनी-अपनी दिशाओं में भागते हैं - वैसे ही यहाँ इनसानों के बीच अफरातफरी मच गई।

दुकानें पहले ही बंद हो चुकी थीं। लोग पहले ही अपने-अपने घरों की तरफ भाग रहे थे - अब तेजी आ गई।

सब बेतहाशा दौड़ने लगे। लोग सड़क पर दौड़ रहे थे... सड़क पर दौड़ते हुए गलियों में घुस जा रहे थे... गलियों से निकलकर सड़क पर आ जाते और भागने लगते थे... रेहाना और प्रेमरंजन भी दौड़ रहे थे...।

सैकड़ों जूतों, चप्पलों, हवाई चप्पलों, नंगे पैरों की बेसुरी आवाजें बज रही थीं...।

कार और दुपहिएवाले भी भाग रहे थे। एक साइकिल चालक एक बच्चे को आगे बैठाए था। पीछे कैरियर पर एक बच्चे को लेकर उसकी पत्नी बैठी हुई थी - दौड़ साइकिल रही थी - भाग परिवार रहा था...। एक आदमी अपने एक बच्चे को गोद में लिए, दूसरे बच्चे को घसीटता हुआ आगे बढ़ रहा था। रेहाना ने देखा, एक स्त्री भागती हुई चली आ रही थी और भागते हुए ही वह पेशाब कर रही थी...। उस स्त्री का चेहरा आँसुओं और रुदन में डूबा हुआ था...।

रेहाना से आगे नहीं बढ़ा गया। वह रुककर हाँफने लगी - "अब चला नहीं जा रहा है।"

"मगर चलना तो पड़ेगा।" प्रेमरंजन ने उसे सहारा दिया।

"मुझे यहीं रहने दो, तुम चले जाओ।"

"मेरी फिक्र मत करो रेहाना, मैं हिंदू हूँ। अधिक हिंदू बनना हुआ तो आगे सड़क पर जरूर कहीं खून मिलेगा, मत्थे पर उसका टीका लगाकर पक्का हिंदू हो जाऊँगा...।"

'गर्व से कहो हम हिंदू हैं...एँ...एँ...एँ...' चिल्लाती शोर मचाती भीड़ सामने की तरफ से चली आ रही थी। भीड़ का नेतृत्व एक भगवाधारी साधू कर रहा था। यह भिन्न प्रकार का साधू था जिसकी कमर में एक तरफ अकालियों की तरह तलवार तो दूसरी तरफ

डाकुओं की तरह पिस्तौल लटकी थी। उसके एक हाथ में त्रिशूल था, दूसरे में सेलफोन। उसके पीछे-पीछे चालीस-पचास का हुजूम था।

वे सभी रेहाना-प्रेमरंजन के पास आकर रुके। साधू एकदम सामने था। शेष तमाशबीन की तरह आस-पास छितरा गए।

साधू उन दोनों से मुखातिब हुआ - "हिंदू हो या म्लेच्छ ?"

"हिंदू।" प्रेमरंजन ने कहा। लेकिन रेहाना के कारण वह थरथरा रहा था।

"तब फिर इतना डरकर क्यों हिंदू बोल रहे हो बच्चा।" साधू ने त्रिशूलवाला हाथ लहराया - "गर्व से बोलो, जोर से बोलो कि हिंदू हो।"

साधू का एक अनुयायी अचानक बड़ी जोर से चिल्लाया- "हर हर महादेव...।"

दूसरा अनुयायी पता नहीं कहाँ से शंख निकालकर बजाने लगा। इन सब चीजों का असर पड़ा - पुलिस का एक अधिकारी अपनी वर्दी, बिल्ले, रिवाल्वर के साथ आया और साधू को देखकर कहा - "अरे आप खुद क्यों तकलीफ करने लगे।"

साधू कोई जवाब देता, तभी उसका मोबाइल बजा। उसने मोबाइलवाला हाथ उठाया, किसी से बातें करने लगा - "हाँ...हाँ... इस्माइलगंज में... हुसैनपुरा की दग गई..."

पुलिस अधिकारी अपनी ड्यूटी करने चला गया।

साधू ने मोबाइल पर अपनी वार्ता खत्म की, तब तक प्रेमरंजन और रेहाना को घेर लिया गया था - एक घेरा बनाकर। उन दोनों पर किसी खूँखार अनहोनी का अंदेशा मँडरा रहा था। प्रेमरंजन को लगा कि उसके शरीर की सारी ताकत निचुड़ गई है, अभी वह लड़खड़ाएगा और गिर पड़ेगा। उसने रेहाना को देखा तो उसे अपना गला खुश्क होता हुआ महसूस हुआ - जैसे उसके शरीर से जल का तत्व की खत्म हो गया हो। वह एकदम फटी-सूखी आवाज में बोला - "हाँ सचमुच मैं हिंदू हूँ।"

"स्वामी जी ये झूठ तो नहीं बोल रहा है, हो सकता है कि ये साला तुरुक हो।" शंख बजानेवाला चेला था यह। प्रेमरंजन ढह गया - "यकीन करिए कि मैं हिंदू हूँ। आप चाहें तो चेक कर लें कि मेरी सुन्नत नहीं हुई है। हिंदू होने का इससे बड़ा सबूत क्या हो सकता है कि मेरी सुन्नत नहीं हुई है।"

"नहीं बच्चा, हिंदुत्व की इतनी सीमित व्याख्या मत करो। हिंदू और कटुवे का भेद केवल लिंगै में नहीं है संपूर्ण रूप से दूनौ भिन्न हैं। हिंदुत्व देवत्व है, इस्लाम असुरत्व।"

प्रेमरंजन ने रेहाना को देखा। वह किसी मूरत की तरह खड़ी थी। उसका पूरा शरीर स्थिर था, केवल दाईं आँख के नीचे का हिस्सा जोर-जोर से फड़क रहा था।

साधू आगे बढ़कर रेहाना की बगल में आ गया। उसकी कमर पर हाथ रखकर हँसा - "बच्चा तुम हिंदू हो, और ये कऊन हैं ?" उसके इस हाथ का मोबाइल अब जेब में था?

रेहाना की आँखें अजीब ढंग से बहुत जल्दी-जल्दी झपकने लगीं। उसकी दाईं आँख के नीचे के हिस्से ने फड़कना बंद कर दिया था पर कुछ ही पल बाद उसका पूरा चेहरा उसी तरह फड़कने लगा। ठोढ़ी तो बेतहाशा फड़क रही थी। रेहाना ने चश्मा आँखों से उठाकर माथे के ऊपर टिकाया और हथेलियों से चेहरे को छिपा लिया। ठीक इसी तरह वह परीक्षा के समय करती थी जब कोई मुश्किल पेपर आ जाता था। प्रेमरंजन ने सोचा कि उस समय की तरह ही वह अभी जब चेहरे से हथेलियाँ हटाएगी तो सामान्य और शांत लगने लगेगी। मुश्किल सवालों के जवाब अच्छी तरह दे लेगी।

रेहाना ने चेहरे से हथेलियों को हटाया। वाकई वह सहज दिखने लगी थी।

उसकी कमर पर साधू का हाथ गंदे केकड़े की तरह सरका - "बताए नहीं बच्चा कि ये कऊन हैं?"

प्रेमरंजन के बोलने के पहले ही रेहाना बोली - "मैं इनकी बहन हूँ। सगी बहन। यकीन न हो तो आपके पास मोबाइल है, हमारे घर मिलाकर दरियाफ्त कर लें।"

साधू चौंका - "ऐं तुम तो उर्दू शब्दों का बहुतै प्रयोग कर रही हो।"

एक चेले ने भीड़ से गरदन निकाली - "स्वामी जी नुक्ता भी लगाय रही है।"

साधू ने कहा - "हाँ देख रहा हूँ... इनका तलुफ्फजौ बहुत कायदे का है...।"

साधू ने रेहाना का गाल सहलाया - "मुसलमानिन हो का?"

"नहीं, मैं ज्योति हूँ।"

"ज्योति का मतलब बताय सकती हो?"

"लौ जिसके जलने से प्रकाश होता है।"

"अच्छा श्रीराम के गुरु का नाम ?"

"वशिष्ठ और विश्वामित्र - रामचंद्र जी के दो गुरु थे।"

"उर्मिला कउन थीं ?"

"लक्ष्मण जी की पत्नी।"

"अऊर मारीचि?"

"एक राक्षस, जिसने हिरन का भेष बनाकर सीता जी को भरमाया था।"

किसी ने उत्साह में आकर ताली बजाई, सभी ताली बजाने लगे।

'हर हर महादेव' चीखकर कहनेवाला पुनः चीखा - "स्वामी जी यह मुसलमानिन हो ही नहीं सकती, कहिए तो शर्त बद लूँ।"

साधू भी खुश लग रहा था। उसने निर्णायक प्रश्न किया - "कउन जात हो तुम लोग ?"

"पंडित।" प्रेमरंजन ने जवाब दिया - "मिश्र।"

साधू की बाँछें खिल गईं। वह इतना खुश हुआ कि फसाद के उस हड़बड़ माहौल में भी एक संक्षिप्त भाषण देने लगा - "यह है असल हिंदुत्व का संस्कार। ज्योति जी को देखिए, शलवार-कुर्ता पहनी हैं। पैंट, जीन्स, स्कर्ट, टाप्स जैसी सेक्सी और पश्चिमी सभ्यता की पोशाकें पहननेवाली छिनारों को सीखना चाहिए इनसे। यदि वे नहीं सीखेंगी तो हम उनको सिखावैंगे।"

"हम उनकी जीन्स, पैंट, स्कर्ट, चड्ढ़ी सब उतार देंगे।" भीड़ में किसी ने जोश दिखाया।

साधू बेहयाई से हँसा - "नहीं, अभी नहीं उतारना है। क्योंकि शीघ्र ही ग्रीष्म के अवकाश होनेवाले हैं। इसके बाद जब स्कूल-कॉलेज खुलैंगे, तब हम इ काम को अन्जाम देवेंगे। अभी हमको सिर्फ 'हिंदू गौरव' के अभियान पर ध्यान देना है।"

वे नारा लगाते हुए आगे बढ़ गए। उनके जुलूस में पीछे जा रहा एक आदमी लौटकर रेहाना के पास आया और याचना करने लगा - "अपनी ऐनक मुझे दे दें।"

चश्मा अभी भी रेहाना के मत्थे पर टिका था। रेहाना ने उसे उतारकर दे दिया। चश्मा आँखों पर लगाकर वह हँसा, चुप हो गया, फिर हँसा और गिलहरी की तरह भागता हुआ जुलूस में शामिल हो गया।

वहाँ वे दोनों रह गए। वे जैसे कुछ समय के लिए किसी अन्य दृश्य में चले गए थे - पहलेवाला दृश्य जो अलोप हो गया था, अब पुनः प्रकट हुआ - चारों तरफ पुलिस के सिपाही थे। उनके बूटों की धप्-धप् वातावरण में अपना स्थान घेर रही थी। लोग ज्यादा घबराहट से घर का रास्ता पार करने लगे थे...।

तभी माइक पर अनाउंसमेंट शुरू हो गया - सुनें...सुनें... सभी खासो आम सुनें। आप लोगों को सूचित किया जाता है कि आपके क्षेत्र वारिसगंज में प्रशासन ने कर्फ्यू लगा दिया है...। हर किसी को ये हिदायत दी जा रही है कि बगैर कर्फ्यू पास के कोई भी शख्स अपने घर से बाहर न निकले वर्ना उसके साथ सख्त कार्रवाई की जाएगी...। साथ ही यह आदेश भी दिया जा रहा है कि जो लोग सड़कों पर या गलियों में आमदरफ्त करते हुए दिखाई दे रहे हैं, जल्द से जल्द अपने घरों में चले जाएँ। हर कोई यह भली-भाँति जान ले कि कर्फ्यू तोड़ना बहुत संगीन अपराध है और इस अपराध के लिए गोली भी मारी जा सकती है...।"

"हे भगवान, आज हमारी रक्षा करो।" प्रेमरंजन सिहर गया। उसे लगा कि आज कोई सनसनाती हुई गोली उसकी पीठ, सीने या कनपटी पर लगेगी। कौन ठीक इन बेरहम पुलिसवालों का कि गोलियों से उसे छलनी ही कर दें। उसने घबराकर रेहाना को देखा...।

...साधू और उसके चेलों के सामने रेहाना ने जिस खौफ को अपने आत्मबल से छिपा रखा था, वह उसके अंदर पुनः प्रकट होने लगा। साधू का घृणित चेहरा, रेहाना की कमर पर केकड़े की तरह रेंगते उसके हाथ - बार-बार कौंधने लगे। साथ में कर्फ्यू के अनाउंसमेंट के शब्दों और भाग रहे पैरों की आवाजों का पार्श्वसंगीत। वह पहले पथराई, फिर पसीने से भीग गई। पसीने में भीगे इस पत्थर की गरदन का एक हिस्सा फड़फड़ाया और क्षण भर बाद कई हिस्से फड़कने लगे...। वह ऐंठने लगी...। शायद कुछ कहने का प्रयत्न कर रही थी - गले से घों...घों... की ध्वनि निकली। प्रेमरंजन ने गौर किया, रेहाना के हाथ-पाँव काँप रहे हैं तथा शरीर में जगह-जगह फड़फड़ाहट हो रही है...। उसका कंठ भयानक रूप से बार-बार फड़का... वह कै करने लगी...। वह वहीं निढाल हो गई...।

प्रेमरंजन ने लक्ष किया - रेहाना की साँस चल रही थी।

असहाय और अकेला प्रेमरंजन - उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे। कुछ नहीं सूझा तो आने-जानेवाली गाड़ियों से लिफ्ट माँगने लगा। वह पास पटरी पर पड़ी रेहाना की तरफ इशारा करता और झुककर लिफ्ट के लिए अनुरोध करने लगता। लेकिन मदद नहीं मिली। कोई लंबी, कोई मझली - कोई मेढक कोई मछली की आकृतिवाली कार आती और चली जाती। प्रेमरंजन उसी तरह नाकामयाब खड़ा रह जाता।

थक-हारकर वह सड़क के बीचोंबीच खड़ा हो गया। प्रार्थना की मुद्रा में हथेलियों को जोड़कर वह दो-तीन चौपहिया चालाकों से रुक जाने के लिए गिड़गिड़ाया। लेकिन कोई न रुका। एक उसके दाएँ से निकल गया, एक उसके बाएँ से। प्रेमरंजन का मन हुआ कि वह अगले आनेवाले वाहन से कुचलकर मर जाए। लेकिन ऐसा कुछ न करके वह रेहाना के पास आया।

उसने रेहाना को सहारा देकर खड़ा किया - "रेहाना जैसे भी हो, हमें यहाँ से निकलना होगा। हिम्मत से काम लो, जितना तेज चल सकती हो चलो... दौड़ो...।"

"ओ मजनू... अपनी लैला को लेकर खिसक... वर्ना अभी नुच जाएगी तेरी लैला... जल्दी कर...।" यह एक अधेड़ सब इन्सपेक्टर था।

"रेहाना दौड़ो...।" प्रेमरंजन ने रेहाना का हाथ पकड़कर खींचा। वह कुछ कदम घिसटकर रुक गई - "पानी।"

पानी कहीं नहीं था। आस-पास बहुत सारा पानी था किंतु वह घरों, दुकानों के भीतर बंद था। धरती के भीतर पानी था, वह धरती के भीतर बंद था।

प्रेमरंजन की आँखें पानी ढूँढ़ रही थीं मगर उसे दिखाई पड़ीं कुछ छायाएँ - ढेर सारे भिखारी भागते, लँगड़ाते, लुढ़कते चले आ रहे थे। वाकई वे छायाओं की तरह दिख रहे थे - किसी तस्वीर के निगेटिव की तरह।

"भागो हरामियो...s...s...। अपनी दुमड़ी-तुमड़ी लेकर भागो..." यह एक दरोगा की आवाज थी जो सिपाहियों की एक छोटी टुकड़ी लेकर भिखारियों को खदेड़ रहा था। भिखारी और तेज भागने लगे... और ज्यादा लँगड़ाने.. और ज्यादा गिरने लगे... और तेजी से उठकर दौड़ने लगे...।

दरअसल ये लोग बुद्धा पार्क और उसके करीब एक मंदिर के आसपास भीख माँग कर गुजर-बसर करते थे, और इसी इलाके में बने एक नए चमकदार - रोशनी के लट्टुओं,

साइन बोर्ड विज्ञापन पटों से सजे - फ्लाई ओवर के नीचे इनके बसेरे थे। दंगे की आशंका से जब भगदड़ मची तो ये भागकर उसी फ्लाई ओवर के नीचे इकट्ठा होकर चाँव-चाँव कर रहे थे। और वहीं से दरोगा अपने सिपाहियों के साथ उन्हें हाँकता हुआ ला रहा था... भाग जाने के लिए कह रहा था। जबकि उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि कहाँ जाएँ ? इसीलिए वे भागते हुए आकर ठिठक गए, जहाँ प्रेमरंजन और रेहाना खड़े थे। वे सभी हाँफ रहे थे... खाँस रहे थे... और जब साँसें कुछ सम हुईं तो दो-चार खि...खि... हँसे। हँसते हुए ही धीमे स्वर में पुलिस को गालियाँ बकने लगे...।

उनकी गालियाँ पुलिसवालों तक नहीं पहुँची पर पुलिसवालों की निगाहें जरूर उन तक पहुँच गईं। इस बार कई सिपाही समवेत चिल्लाए। एक सिपाही ने अपनी जगह पर खड़े-खड़े ही डंडा प्रक्षेप्रास्त्र की तरह भिखारियों पर फेंककर पैर पटका। भिखारी नए सिरे से खदबद...खदबद भागने लगे...।

पुलिस का - दंगे का - खौफ था या भिखारियों के रूप में एक समूह के साथ होने का अहसास - न जाने क्या प्रेरक था कि प्रेमरंजन और रेहाना भी उन्हीं के साथ दौड़ पड़े...। भिखारियों के साथ दौड़ते हुए वे दोनों ऐसे दिख रहे थे जैसे किसी चित्रकार ने धूसर, स्याह और मटमैले रंगोंवाली पेंटिंग पर पीले लाल रंगों के स्ट्रोक लगा दिए हों।

अँधेरा भी चल रहा था आगे-आगे। वह लगातार गहराता जा रहा था...। सड़क सूनी होने लगी थी। इक्का-दुक्का कोई-कोई खामोश, गंतव्य की ओर चला जा रहा होता था, बस। सन्नाटा भंग हुआ था - भिखारियों, प्रेमरंजन और रेहाना की पदचापों से...।

जाने क्या हुआ कि जगह-जगह जलते हुए टायर मिलने लगे। सड़कों पर साइकिल के गोल-गोल टायर जल रहे थे। टायर के वृत्त के चारों ओर आग की लपटें थीं, बीच की जगह खाली। इसी तरह के अनेक अग्निवृत्तों से रास्ता सजा हुआ था। भिखारी, रेहाना और प्रेमरंजन इन जल रहे टायरों से बचते हुए भागने लगे। तभी एक जगह ज्यादा उजाला मिला... एक कतार से कई दुकानें जल रही थीं। एक दुकान जो किसी टेलर मास्टर की थी की गिमटी का दरवाजा आग उगलता हुआ गिरा... सिलाई मशीन आग के बीच दिखने लगी... सिलाई मशीन के पीछे रखा स्टूल भी आग की लपटों में था... इसी स्टूल पर टेलर मास्टर बैठकर पैरों से सिलाई मशीन चलाते हुए कपड़े सिलते थे...। कई दुकानें आग में थीं...। एक दुकान पतंग की थी... रंगबिरंगी पतंगें, डोरी, गड़ारी मंझा - सब राख बन गए थे...। एक दुकान जो सबसे पहले जलाई गई होगी और जो अधजली रह गई थी, उसका केवल ताला जल रहा था...। ताला क्या, जैसे काले दरवाजे में लाल गोला लटक रहा था...।

"अब मुझसे नहीं चला जाएगा...।" रेहाना रुककर हाँफने लगी।

"यहाँ कैसे रुका जा सकता है।" प्रेमरंजन उसका हाथ पकड़कर खींचने लगा।

रेहाना ने हाथ छुड़ाया - "सही कह रहे हो... पर मैं थक गई हूँ... चल नहीं सकती...। मुझे यहीं रहने दो... तुम जाओ...।"

किस्मत से उसी समय एक रिक्शेवाले ने उनके पास रिक्शा रोका - "कहाँ जाना है?"

"रेहाना तुम्हारे अब्बा, अम्मी, जहाँ ठहरे हैं मामू के घर - कहाँ है?"

"मौलवीगंज में।"

"वहाँ तो ना जा पाएँगे भइया।" रिक्शेवाले ने कहा - "वहाँ गए तो तुम दूनो भले बच जाओ पर मुझको मौत ही मिलेगी। हिंदू हूँ ना...।"

प्रेमरंजन ने रेहाना को देखते हुए रिक्शेवाले से कहा - "ठीक है, तुम मेरे कमरे पर चलो शिवपुरी।"

"ढाई सौ लेंगे।"

"अबे पाँच रुपिया लगता है वहाँ तक का...।" प्रेमरंजन झुँझलाया।

"ढाई सौ से एक पइसा कम नहीं...।" रिक्शेवाले ने आगे बढ़ने के लिए पैडिल पर पाँव का दबाव डाला।

तब तक रेहाना के साथ प्रेमरंजन रिक्शे पर बैठ चुका था - "चलो दूँगा ढाई सौ।"

रिक्शा भिखारियों को पीछे छोड़ता हुआ आगे बढ़ने लगा। कुछ देर बाद प्रेमरंजन ने अनायास पीछे मुड़कर देखा - भिखारियों की जगह बड़ा सा धब्बा दिखाई दे रहा था। जैसे किसी तेज तूफान में धूल का कोई बवंडर।

प्रेमरंजन ने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने इस मुसीबत के वक्त में रिक्शेवाले को भेजकर उन दोनों की मदद की। हालाँकि रिक्शेवाला दो सौ पचास रुपये में तैयार हुआ था और यदि रेहाना ने इस भुगतान में कोई साझा न किया तो उसकी जेब कड़क हो सकती थी। लेकिन उसे भीतर-भीतर एक क्षीण सी खुशी भी हो रही थी जिसे स्वीकार करने में वह शर्म का अनुभव कर रहा था। वह क्षीण सी खुशी इस बात की थी कि इस पूरे प्रकरण में उसे रेहाना को अपने कमरे पर ले जाने का मौका मिल रहा था। उसने

रिक्शे पर बैठे-बैठे सोचा - "सब सही सलामत रहा तो कमरे पर रेहाना से खूब प्यार करूँगा। सबसे पहले उसे अपने बिस्तर पर लिटाकर तकिए की टेक लगा दूँगा, जैसे अस्पताल में मरीज को तकिए की टेक लगाते हैं। फिर मैं उसे पीने को पानी और खाने को बिस्कुट दूँगा। चाय बनाऊँगा।" खाने की याद से उसे सब्जी का ध्यान आया - "आलू और बैगन है कमरे पर। पता नहीं रेहाना को बैगन की सब्जी पसंद है कि नहीं। नहीं पसंद करेगी तो आलू की ही बना लूँगा।" उसने आँखें मूँदकर पुनः ईश्वर को धन्यवाद दिया और हाथ जोड़कर फरियाद की - "किसी तरह ठीक-ठाक कमरे तक पहुँचा दो बजरंगबली।"

बजरंगबली उसके सर्वाधिक श्रद्धेय थे - बचपन से ही। उ.प्र. के सुल्तानपुर जनपद की कादीपुर तहसील में उसका घर था। वहाँ से नौ किलोमीटर की दूरी पर हनुमान जी का सिद्ध स्थान बिजेथुआ है। बचपन में प्रेमरंजन अपने चाचा की साइकिल पर बैठकर वहाँ मंगलवार को दर्शन करने और मेला देखने जाता था। बाद में वह स्वयं साइकिल चलाकर जाने लगा था। वहाँ वह देखता कि कई भक्त मंदिर में दर्शन करने के साथ-साथ एक पीपल के वृक्ष पर लाल लँगोट चढ़ाते थे...। इसके अलावा एक बड़े मैदान में ढेर सारी स्त्रियाँ ईंट के चूल्हे जलाकर पूड़ियाँ और रोट बना-बनाकर कड़ाही में छानती रहती थीं। बाद में उसे भी हनुमान सजी को चढ़ाया जाता था।

आज मंगलवार नहीं था, किंतु रेहाना से मुलाकात का खास दिन होने के कारण वह दो सौ किलोमीटर बिजेथुआ तो नहीं इस शहर के बड़े हनुमान जी के मंदिर में जरूर गया था। वहाँ उनके चरणों में गिरकर बड़ी देर गिड़गिड़ाता रहा था - "हे हनुमान स्वामी, हमारे प्यार को सफल बनाओ। हालाँकि मैं स्वयं कच्छा पहनता हूँ मगर रेहाना से मेरा ब्याह हो जाए तो मैं बिजेथुआ आकर लाल लँगोट चढ़ाऊँगा और रोट भी चढ़ाऊँगा। यकीन मानिए, रेहाना खुद ईंटों के चूल्हे पर कड़ाही में रोट छानेगी। वह बहुत अच्छी लड़की है बजरंगबली। फिर मैं उससे प्यार क्यों न करूँ? आखिर जब किशोर कुमार मधुबाला से, शाहरुख खान गौरी से, अजहरुद्दीन संगीता बिजलानी से, बादशाह अकबर जोधाबाई से ब्याह रचा सकते हैं तो मैं रेहाना से शादी क्यों नहीं कर सकता...।"

रिक्शे पर रेहाना के साथ बैठे हुए उसके मन में कौंधा कि आज रेहाना के साथ अपने कमरे पर समय बिताने का जो सुख उसे मिलनेवाला है, हो न हो, उसमें भी हनुमान स्वामी सहाय बने हों। उसे लगा कि रेहाना के साथ कमरे में रहने का अवसर प्रदान करने के लिए हनुमान स्वामी ने ही ये सब दंगा फसाद का विधान रचा है...।

रिक्शेवाले ने सड़क पर जल रहे एक टायर से बचने के चक्कर में रिक्शा झटके से काटा तो प्रेमरंजन गिरत-गिरते बचा। उसका ध्यान टूट चुका था और अब वह रिक्शाचालक की पीठ देख रहा था। रिक्शेवाला रिक्शा बहुत तेज चला रहा था। वह किसी भी सूरत में कर्फ्यू के भरपूर सख्त हो जाने के पहले ज्यादा से ज्यादा कमा लेना चाहता था। क्योंकि कर्फ्यू में कंगाल रहने का दुख उसे पता था। रिक्शा चलाने से पहले वह केले का ठेला लगाता था। रोज कुछ केले बेचकर किसी प्रकार अपने लुढ़कते-ढुनकते परिवार की गाड़ी खींच रहा था। लेकिन एक बार कर्फ्यू लगने के बाद छह दिन केला नहीं बेच सका। नतीजतन उसके सारे अनबिके केले सड़ गए और भोजन तथा दवा की तंगदस्ती में उसका चार साल का लड़का मर गया था। इतना ही नहीं, जब कर्फ्यू उठा लिया गया - जनजीवन सामान्य हो गया - तो उसके पास नए सिरे से केले खरीदने के लिए पैसे न थे, न ठेले का बकाया किराया चुकाने के लिए पैसे थे। अतः वह रिक्शा चलाने लगा था, और तब से आज तक रिक्शा ही चला रहा था...।

रास्ते में दो रोते हुए भटके बच्चे उसके रिक्शे के सामने आ गए तो उसने रिक्शा धीमा कर दिया और प्रेमरंजन रेहाना से बोला - "ये बच्चे भी अगर उधर ही चल रहे हों तो अपनी-अपनी गोदी में बैठा लें आप लोग। हमको ढाई सौ के बदले दुई सौ ही दे दीजिएगा।"

मगर वे बच्चे बैठे नहीं। क्योंकि उनका माँ-पिता का संग तीन-चार मिनट पहले ही छूटा था। अतः उन्हें उम्मीद थी कि वे यहीं कहीं पास में होंगे, और उन दोनों को ढूँढ़ रहे होंगे।

रिक्शा आगे बढ़ गया। वह थोड़ी दूर आगे बढ़ा होगा कि शोर मचाते भागते हुए कई लोग आते दिखे। जब वे करीब आ गए, सुनाई पड़ा... "उधर मत जाओ... गाजर मूली की तरह काट दे रहे हैं... इधर ही आ रहे हैं... भागो, बचाओ रे...s...s...।"

रिक्शेवाले ने तेज ब्रेक लगाया और रिक्शा छोड़कर वह भी भागने लगा।

प्रेमरंजन ने रेहाना से कहा - "तुम बैठो, मैं रिक्शा खींचता हूँ।"

रेहाना कमजोरी महसूस करने के बावजूद भड़क गई - "तुम्हारे पास जरा भी दिमाग है या नहीं?"

जो लोग आगे बढ़ रहे थे या जो भीड़ आगे से आई थी - इधर-उधर के मोड़ों गलियों में घुसने लगे। क्योंकि पीछे कर्फ्यू लग चुका था और आगे गाजर-मूली की तरह काट दिए जाने का खतरा था।

रेहाना फुर्ती से रिक्शे पर से नीचे आ गई - "प्रेमरंजन जल्दी उतरो। अब सड़क पर खड़े रहना या चलना खतरनाक है।"

प्रेमरंजन रिक्शे पर से कूदा - "अब क्या किया जाए ?"

"हमें आस-पास के किसी घर में पनाह माँगनी होगी...।" रेहाना का गला एकदम सूख गया था।

प्रेमरंजन रेहाना का हाथ पकड़कर भागने लगा।

इस घर में दाखिल होने पर उन्होंने देखा, केवल एक कमरे में रोशनी थी।

जब वे किसी ठिकाने की तलाश में भाग-भटक रहे थे, उसी समय बमों के धमाकों की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं। वैसे ये आवाजें कहीं दूर से आ रही थीं लेकिन इतनी ज्यादा थीं कि वे दोनों दहशत से भर गए और सामने दिख रहे इस मकान की कॉलबेल पर प्रेमरंजन ने उँगली रख दी।

वे लगातार कॉलबेल दबा रहे थे लेकिन दरवाजा कोई खोल नहीं रहा था। जबकि उन दोनों को लग रहा था कि गोलियाँ और तलवारें उन्हें ढूँढ़ती हुई पीछे-पीछे आ रही हैं। क्या ठीक कि मौत महज कुछ कदम के फासले पर खड़ी उनको खोज रही हो। प्रेमरंजन ने फिर एक बार कॉलबेल दबाया किंतु भीतर से कोई प्रतिक्रिया नहीं। कहीं तड़ तड़ा तड़ गोलियाँ चलने की आवाजें आई। जैसे कई राउंड फायर हुए हों। पर उससे कहीं ज्यादा फायर की आवाजें उन दोनों के अंदर दौड़ने लगीं। रेहाना के अंदर तो ये आवाजें इतना ज्यादा दौड़ने लगीं कि उसने तोड़ देने के इरादे से दरवाजे को धक्का दिया। दरवाजा टूटा नहीं, आसानी से खुल गया। दरअसल वह बंद ही नहीं था। दोनों ने भीतर आकर दरवाजा बंद कर लिया। उन्हें लगा कि उन्होंने गोलियाँ, बमों, तलवारों, मृत्यु को बाहर कर दिया है। लेकिन यह भी सोचा कि क्या मालूम, ये सभी भीतर कहीं घात लगाकर न छुपे हों।

पर ताज्जुब की बात यह थी कि घर में कोई भी इनसान नहीं था। एक कमरे में रोशनी थी और पंखा चल रहा था, लेकिन वहाँ भी कोई न था। प्रेमरंजन ने सारे घर की लाइटें जला दीं फिर भी कोई नजर न आया। उन दोनों ने घर भर का मुआयना कर लिया।

बाथरूम, स्टोर, किचेन में भी झाँक लिया, कहीं कोई न था। रेहाना इस बीच घर की चीजों के बीच कुछ ढूँढ़ती भी जा रही थी। वह कोई ऐसी शिनाख्त ढूँढ़ रही थी जिससे मालूम हो सके कि यह घर हिंदू का है या मुसलमान का। पर अभी तक कुछ भी न मिला था जिसके सहारे वह किसी नतीजे पर पहुँचती।

"क्या ढूँढ़ रही हो?" प्रेमरंजन ने पूछा।

"कुछ नहीं।" रेहाना चौंक गई। उसने पूछा - "क्या घर में कोई है?"

प्रेमरंजन ने इनकार में सिर हिलाया फिर बोला - "कोई आएगा तब देखेंगे, जो भी हो बाहर से बेहतर हैं हम यहाँ।" रेहाना फ्रिज से बोतल निकालकर पानी पीने लगी। पीने के बाद जो पानी बचा उसे उसने चेहरे पर गिरा लिया। "इस तरह काम नहीं चलेगा, तुम जाकर नहा लो।" प्रेमरंजन ने राय दी।

"पर मेरे कपड़े...।"

"वो मैं लाता हूँ। जब हम घर में हैं तो यहाँ कपड़े भी होंगे।" प्रेमरंजन दूसरे कमरे में जाकर लौटा। उसके हाथों में इस्तरी किया हुआ पैंट, शर्ट और तौलिया था।

"कोई लेडीज कपड़ा नहीं मिला?" रेहाना ने पूछा।

"है, तीन-तीन साड़ियाँ हैं, पर पेटीकोट और ब्लाउज नहीं मिल रहे थे। जाऊँ फिर से ढूँढूँ पेटीकोट, ब्लाउज।"

रेहाना ने उसे घूरा - "नहीं रहने दो।"

"ठीक है, तब जाओ बाथरूम।" प्रेमरंजन ने आग्रह किया।

"नहीं पहले तुम हो आओ...। मुझे डर लग रहा है।"

"अरे तुम गर्मी में भी नहाने से डरती हो...।"

रेहाना ने उसे फिर घूरा और ऐसा धकेला कि वह सीधे बाथरूम में चला गया। बाथरूम में आ जाने पर उसे अहसास हुआ कि रेहाना इसलिए डर रही थी कि बाथरूम में कोई छुपा न हो। बाथरूम में कोई नहीं छुपा था। उसने सिटकनी चढ़ा दी और पैंट की जिप खोल ली। उसे एक गली में एक-सवा घंटा पहले किया अपना मूत्र विसर्जन याद आया। यहाँ बाथरूम में उस गली की तरह चुनावी पोस्टर नहीं लगे थे। लेकिन, उसने मन ही

मन सामने दीवार पर उन दोनों नेताओं में से एक का आदमकद पोस्टर चिपका हुआ पाया। ठीक उनके बगल में दूसरा नेता भी हाफ पैंट पहनकर नमस्ते सदा वत्सले कर रहा था। धीरे-धीरे चारों तरफ की दीवारें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के चित्रों से भर गईं। एक सफेद दाढ़ी-मूँछ वाला भुजंग गौरव था, एक क्लीन शेव्ड महाजिन्न था, एक गेरुआ पहने था तो एक गेरुआ पहने थी - तरह-तरह के चेहरों से बाथरूम की दीवारें सज गई थीं। अब प्रेमरंजन उन सभी का लगा करने जलाभिषेक। वह स्वयं चकित था कि उसके मूत्राशय में इतना जल संचयन कैसे हो गया था। उसने इसे ईश्वर की इच्छा या बजरंगबली की कृपा के रूप में स्वीकार किया और गहन आवेग, उल्लास, तन्मयता के साथ चारों तरफ, ऊपर नीचे मूत्रांग से जलधार बरसाता रहा। जब उसका कोष खाली हो गया तब जाकर उसे चैन मिला - "मेरी रेहाना की तकलीफों के जिम्मेदार लोगो, आशा है आप अपनी इस खिदमत से खुश हुए होंगे।"

प्रेमरंजन के बाथरूम में घुसते ही रेहाना फोन पर झपटी थी। अपने अब्बा, अम्मी और भाई की खैरियत जानने के इरादे से मामू के घर का फोन मिलाया। बात नहीं हो सकी, क्योंकि उस रूट की सभी लाइनें व्यस्त थीं। कुछ देर तक मिलाने के बाद उस रूट की लाइनों की व्यस्तता कम हुई तो मामू का फोन नंबर नामौजूद हो गया और जब वह नंबर एकाएक मौजूद हुआ तो उसकी सेवाएँ अस्थायी रूप से समाप्त हो गई थीं। आखिर में सब कुछ खत्म हो गया, केवल टूँ...टूँ...टूँ बचा। रेहाना ने मामू के पड़ोस का एक नंबर मिलाया, वहाँ भी वही टूँ..टूँ...था। उसने सोचा कि कहीं दूरसंचार व्यवस्था में कोई गड़बड़ी न आ गई हो- इसे जाँचने की गरज से उसने सर्वोदय नगर में रहनेवाली अपनी दोस्त शिल्पी के यहाँ फोन मिलाया, घंटी बजने लगी। उसने तुरंत काटकर तुलसीपुरम के मयंक का नंबर डायल किया, वहाँ भी घंटी थी। उसे भी काटकर उसने मुस्लिम इलाके रहमतगंज के जाहिद, नगमा और मुनव्वर के नंबर मिलाए, वहाँ टूँ...टूँ... थी। उसने वहीं रह रहे सफदर चाचू का नंबर मिलाया, वहाँ भी टूँ...टूँ... थी। उसने अंत में एक बार फिर मामू का नंबर मिलाया और वही टूँ...टूँ... सुनकर रिसीवर रख दिया। वह गुमसुम हो गई। खौफ और अनहोनी की लकीरें उसके चेहरे पर खिंचने लगीं...।

बाथरूम से निकलने पर प्रेमरंजन ने देखा कि जमीन पर बैठी हुई रेहाना आँखें मुँदे हुए हथेलियाँ फैलाकर बुदबुदा रही थी - दुआ माँग रही थी। थोड़ी देर बाद वह उठी और कपड़ों को लेकर बाथरूम में चली गई। बाथरूम बंद करने के पहले उसने वहीं से सर्द आवाज में कहा - "प्रेमरंजन, कोई खतरे की बात होने पर बताना...।"

"बिल्कुल बताऊँगा, तुम फिक्र मत करो।" उसने तेज स्वर में कहा और जाकर बाहरवाले दरवाजे के पास देखने लगा कि वह ठीक से बंद है या नहीं। उसे बंद पाकर उसने भीतर के भी दरवाजे बंद कर लिए।

हिफाजत का इंतजाम कर चुकने के बाद उसने सोचा - "रेहाना को भूख लगी होगी, क्योंकि मुझे भी लगी है। बाथरूम से निकलने पर जब उसे कुछ खाने को और पीने को गर्म चाय मिलेगी तो कितनी खुश होगी।" उसने फ्रिज से दूध, अंडे, और ब्रेड निकाले और किचन में चाय-आमलेट बनाने पहुँच गया।

रेहाना बाथरूम से बाहर आई तो पहले की तुलना में बेहतर मनःस्थिति में दिख रही थी। नेवी ब्लू रंग की पैंट पर हल्के गुलाबी रंग की कमीज पहन रखी थी उसने। बाल सूखे ही थे। भीगने से बचाने के लिए उसने बालों को बाँधकर जूड़ा बना लिया था। पैंट जिस पुरुष की होगी, स्पष्ट है उसकी कमर की तुलना में रेहाना की कमर काफी क्षीण थी, इसलिए पैंट रेहाना की कमर से नीचे सरकी जा रही थी। रेहाना उसे बार-बार सँभाल रही थी।

"तुम मेरी बेल्ट ले लो।" प्रेमरंजन ने अपनी बेल्ट रेहाना को दे दी।

रेहाना को आशंका हुई कि बेल्ट पैंट में फँसाते समय कहीं पैंट नीचे न सरक जाए, वह दूसरे कमरे में बेल्ट लगाने चली गई। वापस आई तो निराश थी। वह उसी प्रकार पैंट पकड़े हुए थी - "तुम्हारी बेल्ट में छेद कम बने हैं। मेरी कमर जहाँ पर इससे कसती है वहाँ कोई छेद ही नहीं है। ये मेरे किसी काम की नहीं।" उसने बेल्ट प्रेमरंजन को सौंप दी। प्रेमरंजन को बेल्ट पर इतना गुस्सा आया कि उसने उसे पटक दिया। वह उसी क्रोध में जाकर वार्डरोब खँगालने लगा और एक पायजामे का इजारबंद खींच लाया - "रेहाना इसी से बेल्ट का काम लो।"

इस बार वह कमरे से आई तो उसकी ब्लू पैंट पर सफेद इजारबंद खिल रहा था। वह हल्का-सा मुस्कराई। पिछले कुछ घंटों के भीतर वह पहली बार मुस्कराई थी। उसे इस प्रकार मुस्कराया देखकर प्रेमरंजन खुश हुआ - "मैं जानता था, नहाने से तुमको आराम मिलेगा, इसलिए तुम्हें बाथरूम भेज रहा था...।"

"थैंक्स प्रेमरंजन। पर तुमने बाथरूम बहुत गंदा कर दिया था... सारी दीवारें... एकदम ऊपर तक गंदी कर दी थीं...।"

"मैंने दीवारों को साफ करने की कोशिश की थी, उस पर बेहद गंदी-गंदी तस्वीरें चिपकी हुई थीं।"

"पर मुझे एक भी नहीं दिखी।"

"कैसे दिखतीं, उन्हें साफ करने के चक्कर में ही तो मुझसे बाथरूम गंदा हुआ...।"

"क्या मतलब?"

"मतलब कुछ नहीं, तुम टेबुल तक चाय ले चलो, मैं आमलेट।" उसने चाय के दो प्याले रेहाना को पकड़ाए।

दोनों ड्रांइगरूम की टेबुल तक आए और सोफे पर बैठ गए। रेहाना सोफे के बगल रखे फोन पर झपटी और मामू का नंबर मिलाने लगी। फिर वही टूँ...टूँ...टूँ... सुनकर उसने बुझे दिल से रिसीवर रख दिया।

"लो खाओ।" प्रेमरंजन ने आमलेट खाने के लिए आग्रह किया।

रेहाना ने इनकार किया और जल्दी-जल्दी चाय सुड़कने लगी। चाय खत्म करके वह कुछ सोचने लगी। उसने अपने मत्थे को रगड़ा, नाक को सहलाया, पलकों को झपकाया और प्रेमरंजन से बोली - "ये सब कोई बुरा ख्वाब तो नहीं है? जो अभी टूटेगा और सब ठीक मिलेगा?"

"काश यह बुरा ख्वाब ही होता।"

"कितना बढ़िया होता कि ये बुरा ख्वाब होता। ख्वाब में दंगा हुआ होता, ख्वाब में ही हम भिखारियों के साथ भाग रहे होते, ख्वाब में ही हम रिक्शा पर बैठते और ख्वाब में ही हम यहाँ इस खाली घर में आ गए होते।"

"रेहाना तुम्हारे बुरे ख्वाब में वह साधू नहीं आया...।"

"उस साधू के लिए, उस पूरे वाकए के लिए मेरे दिल में जो नफरत पैदा हुई, वह ख्वाब में नहीं पैदा हो सकती।"

"इसका मतलब कि साधू के वाकए तक ख्वाब नहीं हकीकत था।" प्रेमरंजन मूर्ख की तरह बोला - "पर रेहाना तुम हिंदुओं के बारे में इतना कैसे जान गई - सीता, उर्मिला,

मारीचि, ज्योति - कैसे जान गई सब। सच बोलना, मुझसे मिलने के बाद ही जाना होगा?"

प्रेमरंजन का अंदाजा था कि रेहाना ने हिंदू रीति, रिवाजों, कथाओं, चरित्रों के बारे में अपना ज्ञानवर्द्धन विवाह के बाद अपने ससुरालवालों को खुश करने के इरादे से किया था जो आज संकट की घड़ी में काम आया। लेकिन रेहाना ने उसके अनुमान को गलत सिद्ध किया - "तुमसे मिलने के पहले ही मैं हिंदू धर्म के बारे में थोड़ा-थोड़ा जानने लगी थी... अब बेहतर जानकारी हो गई है...। मैं ही नहीं कई मुसलमान हिंदुओं के बारे में जान रहे हैं। मुंबई के दंगों में मुसलमानों के कत्ल के बाद वहाँ के कई मुसलमान दंगों में अपने मुसलमान होने की आइडेंटिटी छिपाने के लिए तुम्हारे मजहब की बातें सीखने लगे थे... पर गुजरात के दंगों के बाद मुल्क भर के मुसलमान बैचेन हुए...। तुम्हें हैरानी होगी लेकिन सच है - रामायण, महाभारत की कथाओं की किताबें मेरे अब्बू ने मुझे पढ़ने के लिए दीं। कहा था उस वक्त उन्होंने - 'बेटी पढ़ लो, बुरे वक्त में काम आ सकती हैं...।' और देखा तुमने प्रेमरंजन, वह पढ़ना...बुरे वक्त में काम आया...।" रेहाना सिसकने लगी।

रेहाना को सांत्वना देने का कोई तरीका प्रेमरंजन को न सूझा तो वह पानी का ग्लास पेश करने लगा - "चुप हो जाओ रेहाना... लो पानी पी लो... प्लीज चुप हो जाओ।"

प्रेमरंजन ने छेड़ा - "लगता है तुम्हें पानी पसंद नहीं... नहाने में भी आनाकानी कर रही थी...।"

"मुझको पानी बहुत पसंद है, नदियाँ, समंदर, तालाब मुझको अच्छे लगते हैं। तुम हिंदू लोगों में सुबह-सुबह सूरज को जो जल चढ़ाते हैं, वह भी मेरा पसंदीदा मंजर है।"

प्रेमरंजन को बात में मजा आने लगा - "चलो मानता हूँ कि हिंदुओं का सूरज को जल चढ़ाना तुम्हें अच्छा लगता है लेकिन ये बताओ, हिंदुओं की कौन-सी चीज तुम्हें नापसंद है विशेष रूप से हिंदू लड़कों की कौन-सी बात अच्छी नहीं लगती ?"

"बताऊँ... बता दूँ...।"

"और नहीं तो क्या ?"

"बता रही हूँ... देखो हँसना मत...बुरा भी न मानना...। मुझको जनेऊ पहननेवाले लड़के अच्छे नहीं लगते... जो जनेऊ कान पर चढ़ा लेते हैं वे बिल्कुल बकवास लगते हैं।"

प्रेमरंजन प्रसन्नता से चिल्लाया - "मैं जनेऊ नहीं पहनता। दिखाऊँ...।" वह कमीज के बटन खोलने लगा।

"नहीं...नहीं... प्लीज...।" रेहाना ने अपनी आँखें बाँहों से ढँक लीं।

वह रुक गया। रेहाना ने पूछा - "तुमको मुसलमानों की कौन-सी चीज सबसे खराब लगती है? खास तौर पर मुसलमान लड़कियों की?"

"मुझे वे लड़कियाँ अच्छी नहीं लगतीं जो कमर में काले डोरे में बँधी ताबीज पहनती हैं।"

"मैं नहीं पहनती।"

"दिखाओ...।"

वह शरमा गई - "प्रेमरंजन तुम आला दर्जे के बेवकूफ हो।"

दोनों के बीच का यह तनावहीन क्षण एक नए तनाव के पैदा हो जाने के कारण खत्म हो गया। हुआ, यह कि फोन की घंटी बजने लगी। रेहाना और प्रेमरंजन चौंककर खड़े हो गए। वे इस तरह घबराए हुए थे जैसे फोन नहीं बज रहा था, बल्कि बाहर कई लोग दरवाजा पीट रहे थे। दोनों की समझ में नहीं आ रहा था कि रिसीवर उठाकर बात करें या फोन को उसी प्रकार बजने दें। फोन चुप होकर पुनः बजने लगा और आखिरकार खामोश हो गया।

वे दोनों अपनी-अपनी जगह ढह गए। दोनों को ऐसा लग रहा था जैसे वे बेपनाह थके हुए हैं - किसी ने उन्हें निचोड़ कर रख दिया है।

"आखिर इस घर के लोग गए कहाँ?" किसी गहरे कुएँ से प्रेमरंजन की आवाज निकली।

"लगता है कि इस घर के लोग बाहर गए और लौट नहीं सके।" रेहाना का अंदाजा था।

"लेकिन सवाल यह है कि उन्हें इस तरह घर को खुला छोड़कर क्यों जाना पड़ा?"

क्यों जाना पड़ा? इस प्रश्न पर जब रेहाना और प्रेमरंजन ने सोचना शुरू किया तो कई-कई वजहें सामने आने लगीं। जैसे कि मुमकिन है कि माँ अपने बच्चों के साथ सिनेमा देखने या बाजार गई हो, वहीं वे सभी दंगे में फँस गए हों। माँ ने अपने मोबाइल

से पति को इत्तिला दी हो - वह घबराहट में घर खुला छोड़कर पत्नी-बच्चों की तरफ दौड़ा हो और खुद भी फँस गया हो या पत्नी-बच्चों के साथ हलाक हो चुका हो।

यह भी हो सकता है कि माँ-पिता बच्चे को छोड़कर कहीं निकले हों - जैसे शाम की सैर पर, या सब्जी लाने - और दंगे में फँस गए हों। उन्हें ढूँढ़ने के लिए बच्चा घर खुला ही छोड़कर निकल गया हो और सारे के सारे दंगे की चपेट में आ गए हों।

या कौन ठीक घर के किसी सदस्य की हत्या की सूचना आई हो, जिसे सुनकर शेष सारे सदस्य बदहवास शव के पास भागे हों।

जो भी सच हो, पर इतना जरूर था कि घर के एक या एक से ज्यादा व्यक्तियों के साथ बाहर कोई हादसा हुआ था...।

लेकिन यह भी हो सकता है कि हादसा बाहर नहीं घर में हुआ हो...। घर की स्त्री को दंगाई कई दिन तक बलात्कार करने के मकसद से उठा लिए जा रहे हों और घर के लोग उसे छोड़ देने की मिन्नतें करते-करते काफी आगे बढ़ गए हों - जहाँ से लौटना संभव नहीं।

"प्रेमरंजन मान लो, वे लोग आएँ और मुझे उठाकर ले जाने लगें... तो... ?"

प्रेमरंजन के पास कोई जवाब नहीं था, जैसे संसार के सारे शब्द मृत हो गए थे। वह निरुत्तर रेहाना को देखता रहा।

रेहाना की दाईं आँख के नीचे की जगह फड़की। गरदन पर भी एक स्थान फड़फड़ाया। प्रेमरंजन परेशान होने लगा। उसे लगा कि रेहाना फिर दहशत से घिर रही है। उसका मन बहलाने के लिए उसे कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा तो उसने टेलीविजन चला दिया। रिमोट उसके हाथ में था...।

टेलीविजन अनगिनत दृश्यों से भरा हुआ था। तमाम रंगों, आकृतियों का मेला और ध्वनियों का कोलाहल उसमें मौजूद था। प्रेमरंजन ने टी.वी. चालू कर दिया।

"न्यूज लगाओ...।" रेहाना बोली।

वह न्यूज लगाने लगा। चूँकि उसे पता नहीं था कि इस एरिया में न्यूज चैनल किस-किस नंबर पर आते हैं, इसलिए वह एक के बाद एक बटन दबाने लगा। वह देखता कि यहाँ समाचार नहीं हैं, आगे बढ़ जाता। सभी चैनल जग रहे थे। एक चैनल पर फिल्मी सितारों की भीड़ थी तो दूसरे पर दामाद सास से प्रेम की पींगें बढ़ा रहा था।

प्रेमरंजन दोनों को दुत्कार कर आगे बढ़ गया। आगे बढ़ने पर उसने पाया कि एक सुंदरी जूट की डोरियों के सहारे अपने गुप्तांग ढँके और शरीर खोले नितंब मटका रही है। प्रेमरजंन ने मन-ही-मन में कहा - 'कुतिया चल हट' और रिमोट का बटन दबाकर आगे हुआ - यहाँ एक जटाजूट धारी साधू प्रवचन कर रहा था। प्रेमरंजन ने कहना चाहा - "रेहाना न होती तो अभी मैं तुम पर जल वर्षा करता।" वह साधू भागा और न्यूज चैनल आ गया। एक के बाद एक न्यूज चैनल थे। लेकिन सभी पर इस समय बॉलीवुड की खबरें थीं।

"बंद कर दूँ टी.वी.?" प्रेमरजंन ने पूछा।

"नहीं, चलने दो, बस दो-तीन मिनट बाद शुरू हो जाएँगी खबरें।" रेहाना ने दीवार घड़ी देखते हुए कहा।

प्रेमरंजन ने रिमोट पर से उँगली हटा ली...।

दो-तीन मिनट के बाद एक तेज मसालेदार संगीत के बाद समाचार शुरू हुए।

जल्द ही टी.वी का स्क्रीन धुएँ और आग से भर गया। कई घरों के भीतर आग की धू-धू लपटें लहरा रही थी और चारों तरफ धुआँ था। आसमान दमघोंट कालिख से भर चुका था...।

समाचार वाचक कुछ बोल रहा था... कभी घटना स्थल से संवाददाता बोलने लगता, कभी दोनों के बीच सवाल-जवाब होने लगता था... लेकिन रेहाना कुछ भी सुन नहीं रही थी... वह केवल देख रही थी... समाचार वाचक या संवाददाता जो कुछ बोलते वह भी रेहाना के पास आकर दृश्य बन जा रहा था। इस प्रकार वह दृश्य ही देख रही थी और दृश्य ही सुन रही थी...।

एक मस्जिद में कई शव पड़े हुए थे... लाशें छितराई और जली-अधजली थीं। पेट्रोल किरोसिन छिड़ककर आग लगा दी गई थी। संवाददाता अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने लगा जिसे रेहाना दृश्य के रूप में देख रही थी - दंगाइयों ने मस्जिद को घेरकर चारों तरफ पेट्रोल और किरोसिन का छिड़काव किया था, फिर कई जरकिन किरोसिन, पेट्रोल भीतर उड़ेल दिया था और आग लगा दी...। संवाददाता मस्जिद की चहारदीवारी के करीब पहुँचता है - वहाँ जमीन पर पच्चासों नरमुंड पड़े हुए थे... उनके चेहरे और बाल झुलसे थे। इन नरमुंडों के यहाँ गिरे होने का कारण यह था कि मस्जिद में आग लगने पर लोग जान बचाने के लिए भागने लगे थे पर दरवाजे बंद थे। अतः कई लोग

चहारदीवारी की दीवारों से कूदकर बाहर निकलने की कोशिश करने लगे पर बाहर खड़े दंगाइयों की तलवारों ने उनकी गरदनें काट दीं। जैसे ही भीतर से किसी का सिर बाहर की ओर झुकता, तलवार का हमला होता...।

एक बस्ती भी आग की लपटों में थी...। सिर पर भगवा पट्टी बाँधे और गले में भगवा दुपट्टा डाले लोग मोटर साइकिलों, जीपों और ट्रकों में सवार होकर दौड़ रहे थे। उनके हाथों में तलवारें, रिवाल्वर या त्रिशूल थे...। जिनके हाथों में ये नहीं थे, वे टूटी हुई खाली बोतलें अथवा तेजाब से भरी बोतलें लिए हुए थे...। सड़क पर जगह-जगह दुकानें, घर और वाहन जल रहे थे...। कैमरा यहाँ से उठकर कर बस्ती के अंदरूनी रिहायशी हिस्से में पहुँचता है - यहाँ की दीवारों के चेहरे पर जैसे भयानक चेचक के दाग उभर आएँ हों - वे गोलियों के निशानों से भरी हुई थीं। घरों के कमरे-आँगन रक्त और शवों से भारी हो गए थे और कराहों तथा रुदन से भर गए थे...। एक व्यक्ति के सिर पर तलवार से वार किया गया था वह तड़फड़ा रहा था... कुछ स्त्रियाँ भागी थीं तो बलात्कार के बाद उनके पैर काट डाले गए थे। एक गर्भवती स्त्री को चीर दिया गया था - वह और उसका भ्रूण साथ-साथ मरे पड़े थे...।

दूसरी बस्ती का दृश्य उभरता है - यहाँ पुलिस के लोग गालियाँ देते और गोलियाँ चलाते हुए बस्ती में घुसते हैं...। संवाददाता और उसकी टीम भी बस्ती में जाने का प्रयत्न करती है। पुलिस का एक अधिकारी सिपाहियों की एक टुकड़ी के साथ उन्हें रोक देता है। पुलिस के भीतर चले जाने के कुछ ही देर बाद आग की लपटें, धुआँ अपनी लीला करने लगे...। और अब्बा...s...s... तथा अल्ला... s...s...की चीखें गूँजने लगती हैं...।

तभी बिजली चली गई। अब कमरे में न टेलीविजन के दृश्य थे न उसकी ध्वनियाँ थीं। सिर्फ अँधेरा था।

रोशनी और अँधेरे में क्या फर्क होता है? रोशनी में सब कुछ दिखता है लेकिन वह खुद नहीं दिखती। अँधेरे में कुछ भी नहीं दिखता सिर्फ अँधेरा ही दिखता है। मगर रेहाना को दिख रहा था। स्मृतियाँ, कल्पनाएँ, स्वप्न और आशंकाएँ अँधेरे में ज्यादा स्पष्ट और चटख दिखती हैं...। रेहाना के सामने अनेक दृश्य अँधेरे में चमगादड़ों की तरह फड़फड़ा रहे थे...। अँधेरे में सुनाई अधिक साफ देता है - रेहाना के माथे में ढेर सारी अप्रिय आवाजों का कोहराम था...।

उन्हीं अप्रिय आवाजों के बीच उसे सुनाई दी एक बहुत प्रिय आवाज की दबी-घुटी रुलाई...। प्रेमरंजन अपना रुदन छिपाने की कोशिश कर रहा था...। रेहाना स्तब्ध रह

गई, एक क्षण के लिए उसकी सारी व्यथाएँ पीछे छूट गईं...। वह उठकर प्रेमरंजन के पास आई। अँधेरे में उसने प्रेमरंजन का सिर सहलाया - "तुम क्यों रो रहे हो? तुम्हारा क्या कसूर?"

रुलाई का बाँध टूट गया - वह फूट-फूटकर रोने लगा।